एक और कहानी

लक्ष्मीनारायण लाल

एक और कहानी

[कहानी संग्रह]

लक्ष्मीनारायण लाल

प्रकाशक
नवभारती प्रकाशन
लूकरगंज, इलाहाबाद–१

प्रथम संस्करण
अक्टूबर १९६४

मूल्य
चार रुपये

प्रकाशक
नवभारती प्रकाशन
लूकरगंज, इलाहाबाद–१

पियरलेस प्रिंटर्स, इलाहाबाद में मुद्रित

भूमिका

समकालीन कथा साहित्य में कहानी साहित्य को विशेष कर उसके मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में देखा जा सकता है। कथा साहित्य में कहानी ही क्यों ? यह प्रश्न लोगों के सामने उठ सकता है, और अनेक लोग आज इस प्रश्न को उठा भी रहे हैं।

इसका सिर्फ यही उत्तर है कि मूल्यों के स्तर पर पिछले दर्शक में हिन्दी कहानी ने जो कलागत्-भावगत उपलब्धियाँ की हैं, उसकी तुलना में उपन्यास संग नहीं दे सका है।

समाज के भौतिक स्तर पर हुए परिवर्तनों को पदार्थ विज्ञान की भाँति आर्थिक इतिहासज्ञ सही-सही जाँच सकता है, किन्तु जीवन के सामाजिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में हो रहे संघर्ष और विकास तथा परिवर्तनों को और उसके मूलसूत्र को पूरी मजबूती से सम्भवतः वास्तविक कथाकार ही पकड़ सकता है। और उस पूरी तस्वीर को वह एक वैज्ञानिक की तरह सबको दिखा सकता है। परिवर्तन, विकास होते हैं—जिसके लिये मनुष्य जीवन में संघर्ष अबाध गति से चलता रहता है। लोगों को इसका बोध भी होता रहता है। किन्तु वे लोग महज नये पुराने की कसौटी पर इसका मूल्यांकन करके रह जाते हैं। और हल्के से इस पर अपना निर्णय भी दे जाते हैं। किन्तु यह मूल्यांकन और यह निर्णय न तो सही हो पाता है, न ही वैज्ञानिक। क्योंकि इस तरह स्वभावतः उनकी दृष्टि पर अपनी विरासत का, अपनी पिछड़ी चेतना का बोझ रहता है। फल यह होता है कि मानवीय संघर्ष और उसके परिवर्तन का वास्तविक और सही पता नहीं मिल पाता।

आजादी के बाद की हिन्दी कहानी साहित्य ने अपनी अनेक सीमाओं के बावजूद इसी मानवीय संघर्ष और उसके परिवर्तन के सत्य

प्रिय अर्जुन को

को पहली बार सही-सही, वास्तविक ढंग से पकड़ा है। और जिसके फलस्वरूप कहानी के अन्तरिक व्यक्तित्व में सर्वथा एक नयी चेतना उपजी है। स्वभावतः उसका स्वर बदला है। उसमें एक नया प्रभाव आया है।

इसी अत्यन्त महत्वपूर्ण परिवर्तन को ही लक्षित करने के लिये इसे 'नयी' की संज्ञा दी गयी है, वरना शायद इसे इसकी कोई अपेक्षा नहीं। क्योंकि कोई महज नाम से या विशेषण से वह नहीं होता। वह होता है महज अपने कृतित्व और व्यक्तित्व से।

समकालीन कथा साहित्य में जहाँ तक यह महत्वपूर्ण तत्त्व है, वही इसका मूल्य है और यही सदा उजागर रहेगा। शेष सब जितना है, वह तो हर युग, काल में होता उपजता है और अपने आप नष्ट हो जाता है। महज कहानी के लिये कहानी लिखना, बिना किसी निश्चित वस्तु-शिल्प के मात्र शिल्प चमत्कार दिखाना, केवल इस बूते पर लिखते रहना कि कहानी में थोड़ा नाम यश अर्जित है (अपनी पिछली कृतियों के आधार पर—किन्तु अब वस्तुतः न कुछ कहने को ही है न जीवन से वह सीधा संबंध ही है) और उसे सम्हाले रखना है—यह तत्व समकालीन कथा साहित्य में बहुत है।

पर जितनी वास्तविक नयी कहानी है और उसका महत् साहित्य है—उसमें एक आश्चर्यजनक गहराई और प्रकाशमय ऊँचाई भी। इसने असली अर्थों में शायद पहली बार भारतीय कहानी साहित्य को सशक्त भूमिका प्राप्त की है।

लक्ष्मीनारायण लाल

१७, तुलारामबाग
इलाहाबाद—६

अनुक्रम

माघ मेला के ठाकुर	६
बलदाऊ	२८
गगन महल	३६
चिरई गावँ	५५
रसबेनिया सुहाग भरी	६५
लोहराबीर की नौटंकी	७७
सोन मछली	९६
अभिमन्यु नाटक	१११
हंस राजा हंस रानी	१२७
थाना बेलूरगंज	१४१
सुन्दरी	१६७
एक और कहानी	१८१

माघ मेला के ठाकुर

तीर्थराज प्रयाग का माघमेला।

बाँध की ओर बहुत बड़ा मैदान छोड़कर इस वर्ष गंगा झूँसी की ओर दाब कर बह रही थी। संगम के लिए तभी गंगा को उल्टे जमुना की ओर बहना पड़ा था। ऐसा संगम अपूर्व था—अतुल पुण्यफल-दायी।

प्रशस्त खुला मैदान। उसी तरह इन्तजाम भी खूब था। सबके अगल-अलग शिविर, अलग-अलग बाड़े-अखाड़े। सबके अपने-अपने फैले हुए धाम। संगम की आजानुबाहों के बीच असंख्य झंडे लहलहा रहे थे। बाँध पर खड़े होकर देखने से लगता था मानो धर्म की खेती लहलहा रही हो और वे लाखों यात्री उस खेती के धन-धान्य हों, जिनसे धर्म की यह खेती चलती हो। सबसे आश्चर्य की बात यह कि इस साल पूरब से आये हुए भिखमंगोंकी का भी अपना अलग शिविर लगा था। बाँध से नीचे गंगा की सड़क, जो एक ओर किले के किनारे-किनारे चल कर जमुना तट पर पहुँचती है, और इसी में से दूसरी सड़क फूट कर जो त्रिवेणी मार्ग में मिलती है, जहाँ से यह दूसरी सड़क फूटती है, उसी के दहाने पर भिखमंगों ने अपनी नयी बस्ती

बना ली थी, जिसके पीछे एक ओर वह गंगा का छोड़न–वह छिछला दलदल नाला—मक्खी और मच्छरों का उद्योग गृह।

भिखमंगे, कोढ़ी, अपाहिज, लूले-लंगड़े, बूढ़े-जवान, स्त्री, बालक सभी वर्गों के थे—गन्दे भयावह, पर उनकी कुटिया देखने लायक थीं। भिखमंगों का मुखिया उनका सरदार वह जो दानववीर था, उसकी कुटिया चटाई की बनी हुई थी। चटाई की दीवारें—गंगा की उजली मिट्टी से पुती हुई। ऊपर सरपत-पताई का छाजन। कुटिया के सामने उसका चौका। बाकी कुटियों में कुछ थूनी के ऊपर चटाई ओढ़ा कर, कुछ बाँस के ऊपर कथरी या सरपत फैला कर, कुछ महज फटे गन्दे कपड़े तान कर और शेष महज पुआल के सहारे।

ये सारे भिखमंगे एक ही गिरोह में कटिहार वाली गाड़ी से यहाँ एक साथ आये थे। ठीक खिचड़ी के दिन। आगे-आगे उनका वही सरदार मुखिया दानववीर था, जिसके सिर्फ दोनों पैरों में कोढ़ हुआ है शेष सारा शरीर निर्मल, स्वस्थ। दानव वीर के साथ वह औरत कुंजनी, उसको सारे भिखमंगे मुखियानी कहते हैं।

बाँध से उतरती हुई अपनी सेना के आगे दानववीर ने उस दिन कड़क कर कहा था—'जै जै शंकर! जै भोलेनाथ!' फिर जो उस सेना ने यह दुहराया तो लगा जैसे सावन-भादों की गंगा लहर ले रही हो। तभी कुंजनी ने अपने दोनों हाथ ऊपर उठा कर कहा था।

न कोई माई बाप
न कोई घर!
न कोई किस्मत
न कोई डर!

पीछे वह पूरी सेना फिर उसी एक स्वर में बोल उठी थी—जै जै शंकर, जै भोलेनाथ! हम हैं बराती शंकर के!

भोलेनाथ भयंकर के!
जै जै शंकर!
भोलेनाथ!

सुबह जब ये अलग-अलग होकर माघ मेले की सड़कों पर भीख माँगने के लिए जायेंगे, तब भी ये इसी स्वर को दुहरायेंगे। अपने यही गाने गाकर जैसे ये सिपाही अपने-अपने मोर्चे पर जाते हैं। यह इनका रोज का प्रोग्राम है। माघ मेले में सबको मालूम है कि ये ठीक खिचड़ी के दिन यहाँ आये हैं और अमावस्या, बसन्त और पूर्णमासी के मेलों में भीख मांग कर ये उसी दिन यहां से अपना डेरा कूच कर देंगे। आगे-आगे तब वही कुंजनी गाती हुई चलेगी—

'कौन मिलावे मोंहि जोगिया हो मोसे रहियो न जाय।
ह्यौं हिरनी पिय पारधी हो, मारे सबद के बान...।'

साथ में उसके वही दानववीर अपना चमचा बजाता चलेगा—छक्-छक्, छिम्-छिम्। छक्-छक्, छिम्-छिम्!

कल ही माघ मेला का असली पर्व है—अमावस स्नान। और आज सुबह ही सुबह पुलिस का लाउड स्पीकर सारे माघ मेले भर में एक ही साथ अचानक बोल उठता है—'ठाकुर द्वारा वैकुण्ठधाम वृन्दावन शिविर से पिछली रात को ठाकुरजी की सोने की मूर्त्ति गायब हो गयी है। जिस किसी सज्जन को ठाकुरजी की वह मूर्त्ति मिली हो या उसके विषय में कहीं कुछ भी जानते हों, वह कृपया कंट्रोल रूम में उसकी सूचना दें।'

एक घंटा दिन चढ़ते-चढ़ते वही लाउड स्पीकर फिर बोला—'बड़े ही दुःख के साथ कहना पड़ रहा है कि माघ मेला में आये हुए सुप्रसिद्ध ठाकुर द्वारा वैकुण्ठधाम वृन्दावन शिविरसे ठाकुरजी की सोने की मूर्त्ति गायब हो गयी है। इस धर्म क्षेत्र में ऐसे अधर्म काज करने वाले को

धिक्कार है। बार-बार धिक्कार ! जिस किसी को वह मूर्त्ति मिली हो, या उसके विषय में....।' कुछ देर बाद फिर वही आवाज गूंजी—'पुलिस ठाकुरजी की उस खोयी हुई मूर्त्ति के लिए, तहकीकात शुरू करने जा रही है। हमारा विश्वास है, वह अधर्मी जरूर ही पकड़ा जायेगा, फिर उसकी....!'

पहर भर दिन चढ़ते-चढ़ते फिर वही स्वर उभरा—'उस मूर्त्ति के लिए सवा सौ रुपये का इनाम घोषित किया जा रहा है, जिस किसी को भी वह मूर्त्ति मिली हो, वह फौरन उसे कंट्रोल में जमाकर हमसे अपना नकद इनाम ले।'

भिखमंगों का मुखिया दानववीर अपनी कुटिया के सामने बैठा कम्बल ओढ़े चिलम पी रहा है। उसके सामने ही कुछ दूरी पर कुंजनी चुपचाप खड़ी है। दानववीर शुरू से ही लाउड स्पीकर की वह बात बड़े ध्यान से सुन रहा है और मन ही मन वह विचार कर रहा है कि यह तो माघ मेले में इस साल बड़ा भयानक जुलुम हुआ। वह वहीं से गरदन उठाकर देखता है। सामने ही वह सरजू पंडा, छाते का झंडा। उसका कल्पवासी डेरा, पूरे सवा बीघे भर में फैला हुआ। उससे दायें, ननकू पंडा, लौकी का झंडा, उसकी कल्पवासी झोपड़ियाँ। उसके आगे श्री सनातन धर्म प्रचार शिविर। उससे आगे मिसरिख का श्री सन्तबाड़ा, और उससे भी आगे वह वृन्दावन का ठाकुर द्वारा—श्री वैकुण्ठधाम ! जै जै गोपी जै जै ग्वाल, हम हैं शरण बिहारी लाल। दानववीर वहीं बैठे-बैठे सब देख-सुन रहा है। उसी वैकुण्ठधाम से कृष्ण की सोने की मूर्त्ति गायब हुई है। यह तो बड़ी भयानक बात है।

दानववीर अकेला अपनी कुटिया के सामने बैठा गुन रहा है—उसकी मंडली में स्त्री-पुरुष बाल-बच्चों को लेकर कुल भिखमंगों की

संख्या एक सौ तेरह है। और वे भिखमंगे भी कैसे—कोढ़ी, लूले, लंगड़े, अन्धे, सूर, बहरे, अइबी। पर पुलिस की निगाह में ये भिखमंगे सदा नाचते रहते हैं।

दानववीर को छोड़कर शेष सारे भिखमंगे सुबह ही सुबह अपनी-अपनी सड़क के किनारे जा बैठे हैं। छपरावाले खास ढालवाली सड़क के किनारे। बक्सरवाले गंगा की काली सड़क पर। सिवानवाले हनुमान मन्दिर के पास। पटना और आरावाले किले के पासवाली सड़कपर। मुंगेरवाले त्रिवेनी रोड पर और दरभंगावाले बाँध रोड के ऊपर बायीं पटरी पर। भिखमंगों के बीच इन सड़कों का बँटवारा इसी दानववीर ने किया था।

दानववीर भीख नहीं माँगता। वह सरदार है न। वह दोनों पैरों में खूब मोटा कपड़ा बाँधे डंडे के सहारे मेले भर में घूमता है। धर्म-उपदेश सुनता है। कीर्त्तन में भाग लेता है और अपने भिखमंगे भाइयों की देख-रेख करता है। उन्हें झगड़ा-लड़ाई से दूर रखता है। उनमें से कोई कुछ बुराई का काम-धन्धा न करे, इसकी वह निगरानी करता है। पर कल से उसकी तबीयत खराब है। दोनों पैरों के घाव से बराबर खून बह रहा है, इसलिए वह वहीं मजबूर बैठा हुआ है। दानववीर के संग रहने वाली वह औरत जिसका नाम कुंजनी है न, वह भी औरों की तरह भीख नहीं माँगती। वह सोहर-मंगल गाती है। नाऊवाड़ा में घूम-घूमकर वह देखती रहती है कि जिस बच्चे का मुण्डन हो रहा है, वह वहीं खड़ी होकर सोहर-लचारी गा उठती है। गंगा और त्रिवेनी पर जहाँ कोई दूल्हा-दूल्हन, पति-पत्नी गाँठ जोड़कर नहाने चले कि वह कुंजनी मंगल गाने लगती। एक-एक से वह बीस-बीस आने पैसे पाती, ऊपर से कोंछा में चावल और दाल। देखने में भी कुंजनी भिखारिन नहीं लगती। उसके साफ-सुथरे कपड़े, उसका स्वस्थ,

निर्मल शरीर। गठा हुआ बदन। तीस पैंतीस साल की अवस्था। सांवले रंगकी, गम्भीर मुखवाली। देखने से ही लगता है कि वह गाँव की ग्वालिन है—माघ मेले में दही बेचने आयी है।

दानववीर की वजह से वह भी कल से अपनी रोजी पर नही जा सकी है। उसके घावों का दर्द वह सह नहीं पाती। माघ का यह कलेजा फाड़ पछियांव कोढ़ के घाव में नश्तर जैसा लगता है।

अपनी कुटिया के सामने चुपचाप खड़ी वह कुंजनी भी अब पुलिस के लाउड स्पीकर की बात को बड़े ध्यान से सुन रही है—'वृन्दावन के ठाकुर द्वारा वैकुण्ठधाम से कल रात ठाकुरजी जी की सोने की मूर्त्ति गायब हो गयी है....!'

कुंजनी सिर से पाँव तक सहसा काँप गयी!

उससे बहुत दूरी पर, गंगा की काली सड़क पर, नाले की पुलिया के नीचे खुले मैदान में झोली फैलाये बैठा हुआ वह पिशाचू भी अपने कान उठेरे लाउड स्पीकर की सारी बातें सुन रहा है।—'ठाकुरजी की सोने की मूर्त्ति कल रात गायब हो गई है....सवा सौ रुपये इनाम.... पुलिस खोज-बीन कर रही है....सख्त सजा....अपराधी पकड़ा जायेगा.... धर्म-क्षेत्र में यह अधर्म काज....।'

शरीर पर से अपना कम्बल फेंककर दानववीर कड़ककर खड़ा हो गया और अपने नंगे सीने पर ताल ठोंकर बोला 'तो सुनती है न रे कुंजनी! आखिर में पुलिस हमारी ही नंगा-झोरी लेगी। वो भी कैसे? सुन! सुनती है रे! हमनीं कैं मार बेतन के झलरा कर देगी। न ऊ मर्द जानेगी, न औरत, न बाल न बच्चा, न बुढ़वा न जवान! बस मारेगी, मारेगी! दोहरी घाट का किस्सा तोंके मालूम है न रे कुंजनी! सुनती है न रे! हूँ....गजब भइल! हमनी के मंडली में जब से ई पिशाचू आइल है न! तभी से नूं हमार माथा घूम रहल बाय, बाप रे,

बाप! सुनती है न रे कुंजनी! यह जो पिशाचू है न, यह पहले 'हिस्ट्री-सीटर' था। चार बार ई जेहल काट चुकल है। आखिरी बार ई दरभंगा सेन्टल जेहल में सिपाही के हाथ मनई बनाया गया। सुनती है न रे कुंजनी! यह पिशाचू दरभंगा जेहल में भी चोरी किया। सो हुआ यहकि इसका दायाँ हाथ लुलुहा और दायाँ पैर तभी जेहल की ओखरी में धरकर कूट दिया गया। सुनती है न रे....जड़हन के च्यूरा माफिक। सो दायें हाथ का लूला और दायें पैर ला लंगड़ा यह पिशाचू मामूली भिखमंगा थोड़े ही है! ई खबर तो हमें दरभंगा के मेले में एक पुलिस दारोगा ने दिया। सुनती है न रे पिशाचू की बात! कान खोलकर सुन ले जा। कारन, तू भी जात की अहीर है, और वह पिशाचू भी जात का अहीर ही है। और मैं राजपूत हूँ, ठाकुर। सो मैं न्याव की बात करता हूँ—जात के नाम पर सबका जी पुकुर-पुकुर करता है न। पर सुनती है न रे! पुलिस की निगाह पहले चोर पकड़ती है।'

दानववीर एक सुर से अपनी बात कहता जा रहा था और कुंजनी चुपचाप मेले की ओर अपलक निहार रही थी। कल ही अमावस्या का मेला था और उस समय तीर्थयात्रियों की अपार भीड़ मेले में चली आ रही थी। वह उस आती हुई भीड़ के बीच में जैसे अपने मुलुक के आदमी को ढूँढ़ रही थी। अपने मुलुक के लोग—जिला आरा, तहसील विक्रमगंज, गाँव तनुआजोत।

सात साल पहले की बात है। तनुआजोत गाँव में एक रात डाका पड़ा। एक ओर गाँव के अहीर और दूसरी ओर वे पचास डाकू। चार घंटों तक बेतरह लड़ाई हुई। मोर्चा लेने वालों में एक यह कुंजनी भी थी। उस काण्ड में हुआ यह था कि कुंजनी का पति रंगा डाकुओं को

देखते ही मारे डरके गाँव छोड़ कर अपनी जान लिये पास के एक खेत में भाग कर जा छिपा। दूसरे दिन जब रंगा कुंजनी के सामने आया तो हँसी-हँसी में इसके मुँह से निकला—'लाओ अपनी पाग मैं पहनूँ, और तुम मेरी ये चूड़ियाँ पहनो।' इसके बाद से रंगा कुंजनी से आगे बोला नहीं। यद्यपि कुंजनी ने पति से अपनी हँसी के लिए हजारों माफियाँ माँगी, पर रंगा ने उसे माफ नहीं किया। आगे कुंजनी बीमार पड़ी। तेज बुखार और उसी में पेट का भयानक दर्द। तीन दिन बीत गये रंगा ने उसे एक घूँट पानी तक न दिया। गाँव से थोड़ी दूरी पर एक नदी बहती थी—सिरसी। रात के पिछले पहर जब उसके पेट का दर्द कुछ कम हुआ तो फाँड़ बाँध कर वह अपनी खाट से उठी। पति के सामने गयी, बड़े स्वाभिमान से बोली, 'मुझसे अब भी नहीं बोलोगे तो मैं इसी समय सिरसी में डूबकर अपने प्राण दे दूँगी।' पति ने उलटे एक बड़ी भद्दी गाली दी। काठ की मारी कुंजनी अपने उस कठोर पति का मुँह देखने लगी। तब वह सिर्फ यही बोला—'जा-जा डूब मर। मैं गाँव में सुबह बता दूँगा कि कुंजनी अपनी बीमारी से मर गयी और मैं उसे सिरसी में प्रवाहित कर आया।' और वह कुंजनी उसी तरह फाँड़ बाँधे, मुँह में कपड़ा लपेटे उसी सिरसी के कुण्ड में जाकर कूद पड़ी।

अनन्त प्रवाह!

इससे आगे उसे कुछ नहीं मालूम! भिखमंगों की टोली में यह जो ददिया माँ है न, जादू-टोना मन्तर-जन्तर करनेवाली, यही उसे हाथ पीट-पीट कर बताती है कि कुंजनी की लाश इसी दानवबीर को मिली थी। दानवबीर उस लाश को अपने कन्धे पर लादे घायल पैरों उस नदी से सात कोस पैदल चला था। निबखरी के जंगल में, जहाँ वह भैरव बाबा रहते थे, वहीं कुंजनी को नया जन्म मिला है।

अपनी यह रहस्य-कथा सुन कर कुंजनी ठहाका मार कर हँसती है।

आज भी वह हँसती है। पर वह आज भी यह जानना चाहती है कि हे भगवान! हे अंतर्यामी! यह सब ऐसा क्यों हुआ? पता नहीं!

और वह हट्टा-कट्टा पिशाचू? दरभंगा के मेले में इस भिखमंगी टोली की शरण आया था। हाथ उठाकर वह बोला था—'हे मुखिया सहेब! धर्मावतार! हमनी कैं भी यही गोल लै लेव राजा!'

राजा दानववीर! ठाकुर न्यायराज! और वह कुंजनी! मुखियानी....।

दानववीर को तो उसकी शकल देख कर जरा भी दया न आयी थी। उलटे उसके मुँह से सिर्फ यही निकला था—'ई तो पिशाच हवे रे!'

पर कुंजनी को उस पर करुणा बरसी थी—'लै लेव मुखिया, शरन आइल हवै!'

दोहरी घाट के मेले में मुखिया ने पिशाचू को अपनी मंडली में लिया था! कुंजनी को सब याद है।

इन भिखमंगों की अपनी पूरी दुनिया है। नियम-फर्मान है। इज्जत-मर्यादा है। इनकी दुनिया गोल नहीं, लम्बी है। इनकी उस दुनियाँ की राजधानी है छपरा जिला।

स्वर्ग है बहराइच–गोंडा जिला के पास। हाई कोरट है पटना जिले में। इनके सूबे हैं—किंछोछे, दरगाह, अजमेर, बनारस, अमृतसर, पाटनपोखरी, शाहाबाद, निमरिख....।

छपरा की राजधानी में इनकी जब सालाना बैठक हुई—कचहरी के पास भगवान बाजार में, बाबू दुर्गाप्रसाद रस्तोगी के दया-धर्म से, (सालाना बैठक में दो दिनों का सारा खर्चा यही देते हैं— सदाव्रत के नाम से) तो उस जलसे में पिशाचू ने कुंजनी से बड़े ही कोमल स्वरों में कहा था—'सुनो हो मुखियानी, हमनी कै जात भी अहीर ग्वाला! तनी हमनी कूं देखबा ना....'

कुंजनी ने आँख उठाकर पिशाचू को देखा था। पिशाचू की आखें आँसुओं से तर थीं। उसका लूला हाथ हवा में कांप रहा था—जैसे कुचला हुआ कोई जीवित सर्प हो उतना अंग। उसने न जाने कितने माया-मोह से अपनी करुण-कथा मुखियानी को बतायी थी।....वह पहली बार जब जेहल गया था, उस वक्त उसकी ग्वालिन के पेट में पहला-पहला गर्भ था। वह सवा साल बाद जब जेहल से छूट कर अपने घर आया, तो उस खंडहर में वहाँ उसका कोई नहीं था। ग्वालिन उसकी छाती पीट-पीट कर मर चुकी थी।

ठीक मुखियानी की ही तरह उसकी ग्वालिन का शरीर था। वही काठी, वही रंग। मुखियानी को देख कर पिशाचू को कितनी माया-मोह जगती है। वह जब मुखियानी को देखता है तो वह केदली के पात की तरह कोमल होकर झूम जाता है। मुखियानी उसे समझाती है—'सुनो हो ग्वाला! जब करम में फकीरी लिखी थी तो इस मन को तो पहले ही मर जाना चाहिये था। यह फकीरी तो चिता की भसम है। यही राख-भसम ही हमारा सब-कुछ है। प्रेम, परमेश्वर, इज्जत-आबरू सब। चाहे जितना आँसू झरे सब वही भसम राख में खतम। यह जिनगानी भी तो चिता ही है न ग्वाला। हमारे मुखिया के गुरुजी बताते हैं कि ई दुनिया चन्नन की चिता है जिस पर आठहू पहर बरखा होती रहती है। इसी सुलगती चिता पर सब मानुख बैठे हुए हैं। कोई इस चिता पर बैठा हँस रहा है, तो कोई रो रहा है। वही परमेसर जब एक दिन खुद अपने हाथ से इस गीली चिता की आग फूँक देंगे उसी दिन मुकुती है ग्वाला!'

पिशाचू मुखियानी की बात जरा भी नहीं समझ पा रहा था। पर उसे कितनी मीठी लग रही थी मुखियानी की वे बातें। छपरा के उस सालाना मेले के बाद उनकी टोली बहराइच के मेले में गयी। बहराइच

के मेले में बहिश्त के पानी का एक छोटा-सा पोखरा था। उसमें सारे कोढ़ी नहाते थे। उस पानी से कोढ़ अच्छा हो जाता था। मुखिया बताता था कि पहले सौ कोढ़ियों में इस पानी से पचास कोढ़ी अच्छे हो जाते थे, अब सौ में सिर्फ पाँच कोढ़ी अच्छे होते हैं। पिशाचू ने मुखियानी से पूछा था कि उसका वह लूला हाथ और पैर कैसे अच्छा होगा? मुखियानी ने बताया था—'ग्वाला! लूला हाथ और लंगड़ा पैर यह भी तो उसी भगवान का दिया हुआ है। इनमें भी तो उसी भगवान का वास है। इनसे अच्छा कर्म करते बनेगा तो सब ठीक हो जायगा। पछतावा किस बात का ग्वाला!' 'पर ग्वालिन! मुझे मेरे ये टूटे अंग दुख क्यों देते हैं? 'क्योंकि तुम्हें पछतावा है ग्वाला!' 'सो तो ठीक है' सहसा पिशाचू ने मुखियानी बाँह को छूकर कहा था—'ग्वालिन, तुम्हें देख कर मुझे रुलाई क्यों आयी है?' 'यह तुम्हारा मोहमाया है ग्वाला!' 'फिर मैं अपने इस मोहमया को क्या करूँ मुखियानी?' 'इसे अपनी उस गीली चिता में डाल दो हो ग्वाला।' 'पर उस गीली चिता में यह मोहमाया जलेगी कैसे? इसमें तो यह और भी धुंधवाती है ग्वालिन!'

यह कहते-कहते पिशाचू फफक कर रो पड़ा। ग्वालिन निरुत्तर थी। उसने पिशाचू के माथे पर हाथ रखते हुए कहा था—'रोओ नहीं, ग्वाला, धीरज धरो, नहीं तो वह चिता और भी गीली हो जायेगी। धीरज रखो ग्वाला।'

पिशाचू को कभी नहीं भूलता उसके जलते माथे पर मुखियानी का वह ठंडा हाथ। उसे याद है—दरभंगा सेन्टल जेहल में जब उसका वह दायाँ हाथ और दायाँ पैर ओखली में डाल कर कूटा गया था, तब इसी मुखियानी के हाथ की तरह वह ठंडी दवा जेहल के बड़े डॉक्टर ने उसके घावों पर बाँधी थी। मुखियानी का यह हाथ और डॉक्टर

बाबू की वह दवा। नहीं तो उसे वह हाथ और पैर जड़ से ही कटाना पड़ता।

बहराइच के मेले में भीख माँग-माँग कर पिशाचू ने मुखियानी के लिए एक लाल चुनरी खरीदी थी। चुनरी पहन कर मुखियानी पिशाचू को देख कर मुसकरायी थी। पिशाचू लजा गया था। उसका वह लूला हाथ फड़कने लगा था। वह भिखमंगे की उस मनहूस टोली में फिर कान पर हाथ रख कर गा उठा था—

रामघाट पर लठिया भुलाइल
तरवरिया भुलाइल
लछिमन घाट तबीज
सीता घाट पर हरवा भुलाइल, रसबेनिया भुलाइल
दूनों जोवनवा के बीच !
हाय राम दूनो....।

उसकी यह टेर सुन कर भिखमंगों की सारी औरतें उसके चारों ओर आ खड़ी हो गयी थीं। जैसे हरे वृक्ष की छाया में थकी-माँदी गौवें आ खड़ी होती हैं।

पर मुखिया ने कड़ी बानी में पिशाचू से पूछा था—'क्यों रे पिशाचू ! कुंजनियाँ के लिए ई चुनरी काहें लउले ? बोल ! सही-सही बता, नहीं तो....।'

पिशाचू ने मुखियानी की ओर मुँह करके बताया था—"सुनो हो मुखिया सही बात। भीख माँग कर जो मेरे खाने-पहिनने से बंच जाय तो उसे क्या करूँ ? हिच्छा भई कि उससे मुखियानी के लिए एक चुनरी ला दूँ। अगली बार तुम्हारे लिए एक साफा खरीदूँगा। मुखिया ! तुम भी तो रजपूत ठाकुर हो न ! न्यावकारी ! सो राउर सूना सिर सोहत नहिखै।"

बहराइच के मेले से भिखमंगों का वह जत्था जिला फैजाबाद के किछौछे मेले में आया। वहाँ से टाँडा, फिर फैजाबाद। वहाँ के बाजार में पिशाचू ने मुखिया के लिए सबुज रंग का साफा खरीदा और मुखियानी के लिए धानी चूड़ियाँ और शीशा-कंघी।

इसी शीशे में एक बार दानववीर ने अपना मुँह देखा। मुद्दत बाद शीशे में अपना मुख। उसे पता था कि कोढ़ महज उसके पैरों में ही है। पर यह फूला हुआ मुँह किसका है ? ये बड़े-बड़े झूलते हुए कान किसके हैं ? तो यही दानववीर सिंह हैं। पैर में कोढ़ और मुख पर उसकी छाया। क्यों मुखिया, यह किसका मुख है ? जैसे शीशे ने मुखिया से पूछा हो। तब वे लोग गोरखपुर वाली गाड़ी में बैठ कर सिवान होते हुए कटिहार जा रहे थे। ट्रेन में वे तीनों फर्श पर एक गोलाई में बैठे थे। शीशे में तब अपना वह मुँह देख कर मुखिया एकटक पिशाचू और कुंजनी को देखता रहा। उनके निर्मल मुख, उनके स्वस्थ चेहरे। मुखिया के हाथ से वह आईना सहसा छूट गया था, पर मुखियानी ने उसे टूटने से बचा लिया था। मुखिया के सिर की उस पाग को जैसे एक लम्बी हँसी आ गयी हो। मुखिया ठठा कर हँसता रहा। और जब उसकी हँसी टूटी तो पिशाचू और मुखियानी ने देखा, मुखिया की आँखों में आँसुओं की धारा बह रही है और उसकी घिग्घी बंध रही है। अपनी वह घिग्घी तोड़ कर तब मुखिया ने बतायी थी—अपने दानववीर की कथा। उसका नाम दानववीर नहीं, दानवीर सिंह था। राजपूत ठाकुर। खूब बलवान, पर अत्यन्त क्रोधी। घर पर चार हल की खेती। तीन भाई। तीनों में यह माफिल दुलरुआ। मोकामाघाट से उत्तर की ओर वह जो आम की बड़ी बगिया लौकती है न, वह बाग उसके दादू के ही हाथ की लगायी हुई है। उसी बाग के पीछे ही तो उसका गाँव है—माहन पारा। वह तब लढ़िया चलाकर कहीं से आया

था। बड़ी भूख लगी थी उसको। आधी रात हो गयी थी। घर में सब सो गये थे। भूख में उसका क्रोध और भी दुगना हो जाता था। बन्द किवाड़ पर उसने पैर मारे। किवाड़ की किल्ली धड़ से टूट गयी। वह भीतर गया। अपनी पत्नी को पुकारा–'बबुनी !' दो ही वर्ष हुए थे अभी बबुनी को गौन आये। वह अब तक घर में घूँघट करती थी। बबुनी उठी। चिराग जलाया। पति के लिए भोजन परोसा। लोटे में पानी रखा। और नींद के मारे वह फिर जाकर अपने पलंग पर सो गयी। दानवीर सिंह ने पुकारा–'बबुनी ! सुनती है रे ! बबुनी !' एक पुकार, चार पुकार और छः पुकार। दानवीर सिंह वही खड़ाऊँ पहने बबुनीकी छाती पर जाकर खड़ा हो गया। और सारा पंजर चकनाचूर ! जैसेकेले को फाँक पर किसी ने पैर रख दिये हो !

ऐसा भी क्या क्रोध ? ऐसा भी क्या गुस्सा ?

एक ही क्षण में दो-दो जिन्दगी तबाह ! जिन पैरों से वह अक्षम्य अपराध हुआ, उन्हीं पैरों में कोढ़ ! न्याय तो न्याय ही है। तभी दानवीर सिंह से वह मानुस, दानववीर बन गया !

अपने को यह दानववीर नाम उसी मुखिया का ही दिया हुआ था।

इस बार कटिहार वाली गाड़ी से प्रयाग माघ मेले में आते समय फिर वही तीनों ट्रेन की फर्श पर बैठे हुए आ रहे थे। काशी से आगे मुखिया सो गया था। पिशाचू और कुंजनी जगे बैठे थे। पिशाचू ने कुंजनी से एक सवाल किया—'मुखियानी, यह भिखमंगाई हम क्यों करें ? कोढ़ियों की यह मंडली हमें अच्छी लगती है क्या ? हमें कितना रुपया चाहिये कि हम कहीं अपना घर बना कर कुछ और काम करें ! अभी तो हमारे तीन पैर हैं, कुल पाँच हाथ हैं।'

पिशाचू की यह बात सुन कर मुखियानी को हँसी आ गयी। उसने जवाब दिया—'ग्वाल ! कहीं से अगर पाँच सौ रुपये मिल जायें तो

हमारी नयी जिन्दगी शुरू हो सकती है।'

सिर्फ पाँच सौ रुपये और नयी जिन्दगानी !

माघ मेले में आकर पिशाचू उसी दिन पूरे मेले भर में घूमा था। ठाकुरजी की वह मोहिनी सूरत—सोने की वह मूरत। सुबह आरती हुई थी, आँख मूंदे हाथ जोड़े पिशाचू ने 'हरे कृष्ण हरे हरे' के स्वर में अपना कंठ मिलाया था। फिर दोपहर की आरती और फिर शाम को आरती। पिशाचू ने तीनों आरतियों में शामिल होकर ठाकुर जी का प्रसाद लिया था। चरनामृत को उसने अपने टूटे हाथ में लगाया था। लंगड़े पैर में उसने वहाँ की मिट्टी पोती थी।

हरे कृष्ण ! हे श्याम !

हे माधव ! गोपी धाम !

दूसरे दिन अमावस्या का मेला समाप्त हो गया। सारे भिखमंगों ने खूब कमाया। खूब दान मिला सब को। और तीसरे दिन पुलिस का वही लाउड स्पीकर फिर मेले भर में गूंजा—ठाकुर जी की सोने की मूर्ति अभी तक नहीं मिली। पुलिस और सी० आई० डी० मेले भर में ठाकुर जी की मूर्ति का पता लगा रही थी। ठाकुरद्वारे के पुजारी और छोटे-बड़े महन्थ पिछले तीन दिनों से अन्न जल छोड़े हुए हैं। ठाकुर जी की मूर्ति के लिए उनका आमरण अनशन। मेले में कई पाकेटमार और चोर पकड़े गये, पर ठाकुर जी की उस मूर्ति का कोई पता नहीं।

उस दिन पिशाचू भीख माँगने नहीं गया। मुखिया के पास जाकर 'राम-राम ठाकुर' बोला। मुखियानी की ओर देख कर लजा गया। और वहाँ से वह सीधे मेले के रास्ते में बैठे हुए सगुन विचार के पास गया। दो आने की जगह उसने चार आने पैसे दिये और बोला—'श्यामा चिरई हिरामन तोता ! बस, फस्ट क्लास सगुन विचार दे

नहीं किया। बस, मार दिया हाथ। तनी, हमनी का देखा तो मुखियानी ! ये हो मुखियानी ! मुखियानी....।

मुखियानी का सिर नीचे झुका था। गंगा के सीने पर सूरज की पहली-पहली किरनें बिखर उठी थीं। किले के गुम्मद रंग उठे थे। त्रिवेनी पर स्नान करने वालों की अपार भीड़ हरहरा रही थी। आज वह मुखिया—ठाकुर दानवबीर सिंह भी त्रिवेणी में स्नान करने गया था।

'ये हो मुखियानी ! सुना तो....! बतावा न, का भइल हो ? मुखियानी ने यकायक अपना सिर ऊपर उठाया। पिशाचू काँप गया—मुखियानी का सारा मुँह आँसुओं से तर।

'अरे ! ई का भइल हो ग्वालिन ?

मुखियानी अपने मन के बाँध को जैसे सौ-सौ फावड़े से तोड़ती हुई वह बोल देना चाहती थी। पर वह क्या करे, मन का वह बाँध तो कहीं से टूटता ही नहीं था। स्नान करके वह मुखिया ठाकुर लौटा। माथे पर चन्दन। गले में तुलसी माला, हाथ में गंगाजल !

मुखियानी ने एक भरी नजर से नीचे से ऊपर तक पिशाचू को देखा—उसके तन की सारी चोटें। कमर के नीचे उसकी फटी धोती में एक चकत्ता ताजा खून लगा था। मुखिया ने एक लम्बी साँस ली और उसने उस भयानक खामोशी को भंग किया—'सुनो हो ग्वाला ! ई ग्वालिन तो ठाकुर की वह मूरत वहीं वापस धर आयी।'

पिशाचू एक क्षण तक मुखियानी को देखता रहा, फिर वह मुखिया के सामने हाथ जोड़ कर पर बिना राम-राम कहे बहुत तेजी से पीछे लौटा। अपनी कुटिया की ओर नहीं, सामने सड़क की ओर तेजी से वह चल पड़ा। मुखिया दानवबीर ने पिशाचू को पुकारा—एक बार नहीं, कई बार। और अपने पूरे कंठ से। पर पिशाचू की वह अकेली

बैसाखी और उसका वह लूला हाथ बिजली के पंख की तरह दनदनाते हुए उसे लिये चले जा रहे थे।

मुखिया ने झटपट अपने नंगे सिरपर वही ठाकुर वाला साफा बाँधा और घायल पैरों से दौड़ कर पिशाचू को पकड़ लिया—'हमनी भी तो ठाकुर हई न हो ग्वाला ! एसन माफिक तूं हमनी की गोल से चला जावा !'

अपनी मड़ई के सामने वापस लाकर मुखिया ठाकुर ने मुखियानी के दायें हाथ को पिशाचू के हाथ में दे दिया—'तुम दोनों सुखी रहो ! मेरी कुंजनी....मेरा किशुन गोपाल....।

दोनों दानवीर ठाकुर का मुँह देखते रह गये। जैसे सौ-सौ गंगा के जल में धुला हुआ वह ठाकुर का चेहरा था, ठीक उसी ठाकुर जी की मूरत की तरह ही उसकी आँखें चमक रही थीं। और उसके सिर का वह सबुजरंग का साफा जैसे किसी न्यायाधीश के सिरका मुकुट हो।

पिशाचू और मुखियानी दोनों सड़क पर मुड़ गये। तभी माघ मेले में ठाकुर जी की उस खोयी हुई मूर्त्ति के मिलन के विषय में पुलिस का वह 'लाउड स्पीकर' गूंजा। एक बार नहीं, अनेक बार और कई घोषणाओं के साथ। और उस गूंज-अनुगूंज के नीचे-नीचे वे दोनों चुपचाप आगे बढ़ते गये। आगे....

मेले से ऊपर, बाँध पर चढ़ कर उन दोनों ने घूम कर एक बार अपनी टोली देखी। मड़ई के सामने वह ठाकुर मुखिया इन्हीं की ओर निहारता हुआ खड़ा था और उसके सिर का वह सबुजरंग साफा उस मूरत की ही तरह चमक रहा था।

बलदाऊ

अपने गाँव-घर में बलदाऊ आये दिन किसी-न-किसी के हाथ से मार खाता था। उसकी चाल ऐसी न होती तो ऐसा क्यों होता ? दुखी होकर चइत्तर बाबा बलदाऊ के मुँह को अपने अंक में बाँधकर कहते —बलदाऊ, भला तू ऐसा क्यों करता है रे ? लोग तुझे मारते हैं, और मैं उन्हें कुछ नहीं कह पाता। तेरे शरीर पर की मार जैसे मेरी ही पीठ पर पड़ती है। सच, बेटा। मैं कराहकर रह जाता हूँ, और तू है कि चुपचाप सब की मार सह लेता है और दूसरे दिन फिर वही काम करता है। छीः-छीः लाज कर बलदाऊ ! मैं तेरा गरीब बाबा हूँ। मुझे तो अपनी खेती से पूरे साल खाने को अन्न भी नहीं मिलता, नहीं तो मैं तेरे लिने नाद में अन्न का भोजन भरवा देता। सन्तोष कर बलदाऊ, अब तू किसी के भी घर में न जा। लाज कर ! मुझे देख ! सोच बेटा, अगर किसी दिन किसी की लाठी तेरे ठाँव-कुठाँव लग गयी तो क्या होगा !

चइत्तर बाबा सुबह-शाम बलदाऊ को ऐसा समझाते। वह भी निरा भोला बनकर शिशुवत् बाबा की बातें सुनता रहता और हिरन-जैसी आँखों से शून्य में ताकता रह जाता। पीठ पर उभरी हुई चोटों पर जब चइत्तर बाबा अपना हाथ सहलाते तो बलदाऊ का सारा शरीर फुरफुरी की तरह गनगना उठता। फिर वह बाबा की बाहें चाटने लगता और चइत्तर बाबा की आँखें प्रेम से भर उठतीं।

बलदाऊ की माँ पश्चिम की थी, गोंडा जिले के सरजू कछार की। खूब भरा-पूरा डील-डौल और दूध जैसा सफेद रंग। पाँच सेर एक वक्त दूध देने वाली।

बलदाऊ की एक बड़ी बहन थी—धँवरी। बिल्कुल अपनी माँ पर पड़ी हुई। सुन्दर, सीधी-शरीफ़। पर बलदाऊ पहला लाड़ला पूत था न, इसलिए उसे माँ का प्यार, धँवरी दीदी का स्नेह और मालिक का दुलार सब एक साथ मिला। और इतने अधिक लाड़-प्यार के कारण बलदाऊ बचपन से ही चिभचटोर और घर घुसना निकल गया। उसकी जुबान पर अन्न का स्वाद चढ़ गया।

जब वह दो महीने का था, तो बच्चों के साथ वह खेलता-कूदता खुलेआम घर में आता-जाता, लेकिन जब वह छः महीने का हुआ तो वह मारने दौड़ने पर भी माँ और दीदी के साथ मैदान में चरने नहीं जाता था। अकेले दम मारे दरवाज़े पर बैठा रहता और मौक़ा पाते ही चुपचाप घर में घुस जाता और अन्न ढूढ़ते-ढूढ़ते जो भी अन्न उसे जैसे भी मिलता, वह उसे भरपेट खा जाता और बाहर आकर शरीफ़ों की तरह बड़े मज़े से पागुल करने लगता।

बलदाऊ जब खूँटे में बाँधा जाता, तो वह बड़ी सफाई से रस्सी को खूँटे से खोल लेता और जब उसे अन्न की बहुत भूख लगी होती तो वह सीधे घर में धड़धड़ाता घुस जाता और चौके में दौड़ कर जो कुछ मिलता मुँह मार के खा डालता, चाहे वह परोसी हुई थाली हो चाहे बच्चों का बासी हो, चाहे बटुला का भात हो, चाहे रोटी-साग कभी-कभी वह बंदरों की तरह थाली में खाते हुए बच्चों के आगे से

रोटी छीन ले जाता और लोग हट्ट-हट्ट कर चिलते रह जाते। वह बेतरह मार सह लेता पर अन्न की मार से वह कभी पीछे न हटता। ऐसी बुरी आदत पड़ गयी थी बलदाऊ की।

चइत्तर बाबा उससे हैरान हो गये थे। जब कोई मारता हुआ बलदाऊ को चइत्तर बाबा के पास लाकर ऊपर से उसकी शिकायत करता तो बाबा को बहुत अखरता। मार और ऊपर से शिकायत भी। अरे, ऐसा गऊ न होता बलदाऊ तो कोई क्या कह कर निकल जाता। फिर बाबा को अनायास ही गरीबी याद आ जाती।

यों खेत बाबा के कम न थे, कुल दस बीघे की खेती थी। पर असफल किसानी और करम के फेर से उन दसों बीघे में इतनी भी पैदावार दोनों फसलों में मिला कर नहीं होती थी कि एक वक्त खाकर पूरा साल बिता लिया जाय। बाबा मोटा-महीन सब जोड़ कर मुश्किल से केवल छः महीने अपनी पैदावार की खाते थे, बाक़ी बाज़ार से मोल, उधार-बाक़ी से ही उनका काम चलता था। इसके लिए ऊपर से वही एक भैंस और एक गाय के दूध, माठा और घी की बिक्री का सहारा।

जेठ के दूसरे पाख में बलदाऊ की बड़ी बहिन धँवरी दुधार होने को थी। चइत्तर बाबा दिन-रात देवतन बाबा से मनाते थे कि धँवरी के बछवा ही हो। लेकिन बलदाऊ जैसा घर घुसना और निर्लज्ज चिभ-चटोर नहीं। सीधा गऊ माफिक बछड़ा, ऐसा कि जो तीन साल बाद हल जोतने लायक़ हो जाया।

चइत्तर बाबा के पास दो बैल थे पर दोनों बूढ़े हो चले थे। बलदाऊ का जब जन्म हुआ था तो चइत्तर बाबा को बहुत बड़ी आशा बँधी थी कि चलो, दहिनवाँ बैल तो आ गया। किन्तु छः महीने का बलदाऊ गादर, घर-घुसना और अन्न-चोर निकल गया।

पर धँवरी के गर्भ से चइत्तर बाबा को फिर आशा बँधी। और जेठ

के दूसरे पाख में सचमुच धँवरी के बछवा पैदा हुआ, बिल्कुल अपनी माँ और नानी पर पड़ा हुआ।

मारे खुशी के चइत्तर बाबा बलदाऊ के मुँह पर अपनी नाक गड़ाकर बोले—पुन रे बलदाऊ ! तेरा भैने जन्मा है। अब तू मामा हो गया ! अब तो लाज कर बलदाऊ और अपनी हरकत छोड़ बेटा !

पर कौन मानता है !

अषाढ़ महीने में कल्लू सिंह की लड़की परागा की शादी के कुल सात दिन बाक़ी थे। पिपरा से बारात आने को थी। उसके लिए कल्लू सिंह के आँगन में आधा मन उरद की दाल का धोइया सुखावन में पड़ा सूख रहा था। दोपहर का वक्त। बलदाऊ चुपके-से घात पाते ही कल्लू सिंह के आँगन में घुस गया और भरपेट धोइया खा गया। जो बचा, वह सब रद्द-बद्द हो गया।

बलदाऊ रंगे हाथों पकड़ा तो नहीं गया, पर चोरी उसकी स्वयं-सिद्ध ही थी। कल्लू सिंह के पिछवारे जामुन के पेड़ के नीचे मजे से पागुल करता हुआ बलदाऊ ठाकुर के हाथ गिरफ्तार कर लिया गया। ठाकुर ने बहुत मारा उसे। ऊपर से चइत्तर बाबा को पन्दरह रुपये डाँड़ भी देने पड़े।

कर्ज चुकाने के लिए चइत्तर ने बलदाऊ को विवशतः बेच देना चाहा। पर उस गाँव-जवार में कोई बलदाऊ को मुफ्त में भी लेने को तैयार न हुआ, रुपये देकर खरीदने की बात कौन कहे।

तो बलदाउ को कोई नहीं लेता। यहाँ तक कि आस-पास के ब्राह्मण गोंसाई भी नहीं लेते। लोग बाबा को सलाह देने लगे कि इसे कहीं दूर ले जाकर साँड़ दगा दिया जाय।

बाबा को रात-रात भर नींद नहीं आती थी। बलदाऊ के खूँटे के पास अपनी खाट बिछाये और उसके सिर को सहलाते हुए बाबा सोचते

रह जाते थे कि यह बलदाऊ साँड़ भी तो नहीं हो सकता। गाँव-घर को छोड़ यह मैदान-खेत में जाता तो बात ही क्या थी! साँड़ होकर यह खेत-मैदान में तो जायगा ही नहीं। और जब यह गाँव में रहेगा तो इसकी यही दशा होगी। कोई मेरे बलदाऊ को मार डालेगा या इसे कोई कसाई के हाथ दे देगा।

एक दिन सोई रात में चइत्तर बाबा बलदाऊ का कंधा पकड़ कर रोने लगे। और जब खूब जी भर कर रो चुके तो धँवरी के बछरू के पास जाकर बोले—सुन रे नाती बाबा, अब मैं तेरे बलदाऊ मामा को यहाँ से कहीं ज़रूर हटा दूँगा, नहीं तो कहीं वह तेरी भी आदत न खराब कर दे।

अगले दिन कर्ज़ काढ़ कर चइत्तर बाबा ने अरवा चावल और उरद की दाल खरीदी। बड़े प्रेम से दाल-भात बना कर एक बड़े-से परात में बलदाऊ के लिए परोस दिया। भर पेट खिला कर चइत्तर बाबा के पूरे परिवार ने उसके पाँव छुए। फिर चार हाथ कोरा कपड़ा हल्दी में रँगा कर उसके एक कोने में चार पैसे, अक्षत और सुपारी बाँध कर उसे बलदाऊ के ऊपर ओढ़ा दिया गया और चइत्तर बाबा स्वयं उसे लिए हुए अपने गाँव-जवार से बहुत दूर तमेसर नाथ की ओर चल पड़े।

बलदाऊ की उस विदाई में गाँव के सारे बच्चे उसके प्रेम में अकेलवा पेड़ तक आये। बलदाऊ की माँ और धँवरी कान उटेर-उटेर कर बाँऽ बाँऽ करती रही। पर बलदाऊ सिर झुकाये परम शान्त बनवासी-बाबा के साथ गाँव के पूरबी सिवान को पार कर गया।

चइत्तर बाबा शंकर भगवान के उपासक थे। तमेसर नाथ के शंकर भगवान बलदाऊ को जरूर स्वीकार करेंगे। बाबा का यह विश्वास फल भी गया। वहाँ के गोंसाई ने बलदाऊ को सहर्ष ले लिया।

धँवरी का बछरू ढाई साल में ही जवान-सा दिखने लगा। अनेक व्यापारी उसे मोल लेने के लिए आने लगे। गाँव-जवार के बड़े-कड़े खेतिहर लोग उसे खरीदने के लिए दाम के ऊपर दाम चढ़ाने लगे।

पर जब तक वह बछवा उदंत (दूध के दाँत वाला) रहा, चइत्तर बाबा ने किसी को कोई उत्तर न दिया। और जब वह पूरे तीन साल के बाद दो दाँत का हुआ, चइत्तर बाबा ने कह दिया—धँवरी बेटी का यह बछवा मैं लाख रुपये में भी न बेचूँगा। मैं इसे अपने हल में जोतूँगा।

पर किसके साथ? उस जवान बछरू की जोड़ी कहाँ है? चइत्तर बाबा के तो अब तक एक ही बैल शेष रह गया है वह भी बूढ़ा। बूढ़े के साथ उस देवता बछरू को हल में जोतना कितना अनुचित है। लोग कितना हँसेंगे।

अषाढ़ का महीना। पश्चिम के आसमान में अब बादल दिखने लगे। बाबा ने हवा का रुख पहचाना। रात को देखा, बबूल की पत्तियों को कीड़े खाने लगे हैं। श्यामा चिड़िया सुबह क्या गाती है.... ओहो! तो अब की अषाढ़ ज़रा जल्दी बरसेगा!! तो इस बार आद्रा में ही धान बोने को मिलेगा!

बाबा ने खूँटे पर देवता को तरह खड़े हुए बछरू को गद्‌गद् होकर चूम लिया। बूढ़े बैल को तीस रुपये में ही बेच दिया और सत्तर रुपये कर्ज़ काढ़ कर पूरे सौ को अपनी टेंट में कसे बाबा बछरू खरीदने नगर-बाज़ार गये। पर आज के ज़माने में सौ का क्या बैल मिलेगा? नये बछरू चार-चार सौ रुपये में बिक रहे थे।

नगर- बाज़ार से निराश होकर बाबा पुरानी बस्ती की बरदही में गये। कई बाज़ार देखे, पर कोई फ़ायदा नही। सुना कि खलीलाबाद के बाज़ार में बैल कुछ सस्ते हैं। साइत सोध कर भगवान का नाम

लेते-लेते बाबा पैदल खलीलाबाद गये। वहाँ भी बैलों का बाज़ार देखा। हिम्मत पस्त हो गई। सौ रुपये में धँवरी के बेटे की क्या जोड़ी मिलेगी। उसके लिए कम-से-कम तीन सौ रुपये चाहिए।

निराश बाबा ने देखा, बज़ार उठ गयी है। गाँव के किसान अपने-अपने बैलों के साथ लौट गये हैं। व्यापारी लोग खाना बनाने की तैयारी करने लगे हैं। पर एक बूढ़ा किसान अपने एक बैल के साथ, अब भी सड़क के किनारे बैठा है।

उस बैल को किसी ने नहीं पूछा। पूछता कैसे? बैल की दोनों सींगें टूटी हैं। पूँछ बाँड़ी है और आदमी को देखते ही वह अपना माथा झुका लेता है। 'मुँह का मोट, माथ का महुअर'। यह कहावत बाबा को याद आया और वह उस बैल से पीछे हट आये।

अगले दिन बाबा ने फिर उस बैल को उसी बूढ़े किसान के साथ देखा। लोग कहते थे—टूटी सींग, कटी-बाड़ी पूँछ का बैल अशुभ होता है। असगुन! बैल जवान था। उसने सिर उठा कर एक बार बड़ी करुण दृष्टि से चइत्तर बाबा को देखा। बाबा का मन छू गया।

—क्या दाम है भइया इस बैल का?—बाबा ने बैल के पीठ को ठोंकते हुए कहा।

—पचहत्तर रुपये।

बाबा ने सोचा, अभागे बैल को सींग-पूँछ साबुत होती तो ढाई सौ रुपये में यह भी बैल न मिलता।

बैल की उन उदास आँखों से मोहित बाबा ने सब अशुभ-अपावन भूलकर उसे पचास रुपये में खरीद लिया। गाँव पहुँचे तो बैल को देखते ही लोग बाबा को हँसने लगे। पर बाबा ने सब की ओर से कान में तेल डाल लिया।

सछ, चढ़ते ही अषाढ़ बरस गया। किसी को भी विश्वास न था।

कि चइत्तर बाबा की वह अनमेल जोड़ी काम देगी। पर सब आश्चर्य चकित रह गये यह देख कर कि चइत्तर बाबा बरसते पानी में हल जोत रहे हैं और धँवरी का जवान बेटा उस बाँड़े बैल के साथ झमझम चल रहा था। बाँड़ा दाहिन, धँवरी का पूत बायाँ। अद्‌भुत जोड़ी, जैसे दोनों बैल गाते-नाचते बाबा के हल-हेंगा में चल रहे हों।

क्वार महीने में चइत्तर बाबा की फसल गाँव भर से ऊपर हुई। ऐसी धान की फसल बाबा ने कभी न काटी थी। इससे दूनी रबी की फसल हुई। बाबा का सारा क़र्जा चुक गया। खेत में जैसे लक्ष्मी बरसने लगीं बाबा का हाथ यश से भर गया। वह बँड़वा बैल पूज्य, शुभ और पवन हो गया।

तीन वर्षों की अपूर्व खेती में चइत्तर बाबा की सारी क़िस्मत चमक गयी। गाँव में वह बीज बिसार देने लगे। खपरैल की घारी बन गयी। पक्की चरन तैयार हो गई और बाबा लोगों के नीचे-खाले काम आने लगे।

धँवरी के पूत और बाँड़ा बैल में बेहद प्यार हो गया था। एक दूसरे के बिना एक क्षण भी वे खूँटे पर नहीं रह सकते थे। एक बार ठाकुर का मरकहवा बैल खूँटे से तुड़ाकर धँवरी वाले बैल पर मारने दौड़ा। तत्काल बाँड़ा बैल ने अपना पगहा तुड़ा कर टूटी सींग से ठाकुर के बैल को दूर से ही मार भगाया था। मजाल क्या कि धँवरी वाले बैल के शरीर पर कोई कीड़ा अथवा धब्बा रह जाय। बाँड़ा बैल उसे जीभ से सहलाता रहता था, जैसे माँ अपने नवजात बछरू को प्यार से सहलाती है।

माघ की ठंडी रात। बेहद कुहासा पड़ रहा था। गाँव के पास ही उत्तर सिवान में कल्लू सिंह के तीन बीघे खेत में खूब गेहूँ की फसल लगी थी। गेहूँ बस अभी फूल ले चुका था। सोहरतगंज के रजभरों

से कल्लू सिंह के परिवार की बड़ी कटु दुश्मनी चल रही थी।

बाँड़ा बैल आधी रात के पहर में सहसा खूँटे पर भड़क गया। उत्तर सिवान की ओर मुँह किये फों-फों करता हुआ खूँटे से वह अपना पगहा तुड़ाने लगा। पगहा न टूटा तो खूँटे को ही जड़ से उखाड़े हुए वह उत्तर सिवान में भागा। फिर धँवरी वाला बैल अकेले खूँटे पर 'बाँ-बाँ' करने लगा।

बात यह थी कि कल्लू सिंह के गेहूँ की लहलहाती फसल की सोहरतगंज के क़रीब बीस रजभर काट कर गिरा रहे थे। बाँड़ा बैल काल जैसा फुंकारता हुआ उन पर टूट पड़ा। उसने पहले ही आक्रमण में कई लोगों को घायल कर दिया। रजभर लाठी-भालों से सज कर आये थे। उन्होंने दूसरे ही क्षण बाँड़ा बैल को घेर लिया और उसे लाठी और भाले से मारने लगे। धँवरी वाले बैल की पुकार और छटपटाहट से चइत्तर बाबा का परिवार जग गया था। उत्तरी सिवान से लाठी की आवाज़ और बाँड़ा बैल की फुंकार गाँव के हृदय को जैसे जगा रही थी। कल्लू सिंह, चइत्तर बाबा और आस-पड़ोस के सभी परिवार के जवान-बूढ़े लाठी ले-लेकर खेत की ओर दौड़े। सोहरतगंज के रज भर मैदान छोड़ कर भाग निकले। बाँड़ा बैल खेत में भीष्म पितामह की तरह गिरा हुआ था। उसके शरीर में तीन भाले गड़े के गड़े रह गये थे। कितनी लाठियाँ वहाँ टूटी पड़ी थीं। इतने पर भी बाँड़ा बैल ने गाँव वालों को बड़े गर्व से सिर उठा कर देखा। लोगों ने देखा, उसके दोनों अगले पैर टूट गये हैं। सारा माथा खून से रँगा है। जहाँ भाले धँसे थे, वहाँ से खून की धारा रुक नहीं रही है।

लोग उसे उठाकर गाँव में ले आये। सुबह हुई। बाँड़ा बैल के दर्शन करने के लिए आस-पास के सारे गाँव टूट पड़े।

इतना वीर और सुभागा बैल!

चइत्तर बाबा अपने पुत्र से अधिक प्रिय उस बैल के घावों और चोटों पर हाथ फेरते रहे। बाबा ने उसे सहलाते हुए अचानक ध्यान दिया, उसका घायल शरीर फुरफुरी की तरह गनगना रहा है। फिर वह बाबा की बाँह चाटने लगा। बाबा ने काँपकर उसके मुख को अपने हाथों में ले लिया और घायल हिरन जैसी उसकी अथाह चितवन को देखकर वह दहाड़ मारकर रो पड़े—बलदाऊ! आह मेरा बलदाऊ!

लोग आश्चर्यचकित रह गये। कल्लू सिंह ने भी बलदाऊ को पहचान लिया। उरद की दाल की उस चोरी में उन्होंने उसकी नाक पर मारा था न! बायें नथुने के पास हुए घाव का निशान उनकी आँखों में कौंध गया। दिन डूबते-डूबते बलदाऊ मर गया। उसकी खुली हुई आँखों में खून जम आया था। जैसे वह रक्त की दरिया में खड़ा हाथ जोड़े सबसे क्षमा माँग रहा हो।

चइत्तर बाबा बलदाऊ की उन आँखों की डोर में बँधे खड़े थे। शेष गाँव के वे सब लोग रो रहे थे जिन्होंने तब बलदाऊ को किसी-न-किसी बहाने मारा था।

उसके गाँव वालों ने कहा—बलदाऊ यहाँ बलिदान देने आया था! वाह रे बलदाऊ। खूब'''

दूसरे गाँव के लोगों ने कहा—मामा-भैने को कमाई हुई खेती थी, तब क्यों न चइत्तर बाबा के खेत में सोना बरसे। जिस किसान के घर मामा-भैने हल चलें, उसके घर किस चीज़ की कमी! धन्य हो बलदाऊ!

किन्तु उस रुदन और लोगों की तरह-तरह की बातों के बीच में वह दिवंगत बलदाऊ, जिसके शरीर में कोई ऐसी जगह न बची थी जिस पर मनुष्य की मार न पड़ी हो, वह उन रक्त जमी आँखों से कह रहा था—सुनो बाबा, जिस गोसाईं को तुमने मुझे दान कर दिया था

न, उसने मुझे एक मुसलमान के हाथ बीस रुपये में बेंच दिया। मेरी वह आदत तो थी ही। उसने एक दिन गुस्से में आकर मेरी दोनों सींगें तोड़ डालीं। फिर उसने मुझे पन्द्रह रुपये में कसाई के हाथ बेंच दिया। कसाई के खूँटे से रात को मैं चोरी से भाग निकला। बहुत दूर भाग गया। फिर मुझे एक कुरमी ने पकड़ कर बाँध लिया और उसने गाँव वालों से कहा—मैंने इसे सौ रुपये में खरीदा है। उसने मुझे हल में जोता। मेरी आदत तो थी नहीं। उसने ताव में आकर मेरी पूँछ ही तोड़ डाली। तब मैं पचास रुपये में उस चमार के हाथ में बेंचा गया फिर·····क्षमा बाबा! क्षमा कल्लू सिंह! क्षमा गाँव वालो!

रात को बलदाऊ के पास से जब सब लोग हट गये, तब चइत्तर बाबा ने बलदाऊ की माँ, उसकी बहन धँवरी और धँवरी वाले भैंने को खूँटे से छोड़ दिया। वे सब बलदाऊ को घेरे खड़े सूँघते रहे। माँ ने उसका माथा चाटा। बहन लम्बी साँस लेकर उसकी पीठ से सटी बैठ गयी। मैंने मामा के चारों पैरों के बीच में अपना माथा डाले बैठा रहा।

सुबह बलदाऊ मनवर नदी के तट पर गाड़ा जायेगा।

गगन महल

जोगियों का मौन-व्रत कोई डेढ़ बजे खत्म हुआ।

मोतीदास को उतनी-सी साधना कुछ भी न लगी। आज से केवल पाँच वर्ष पूर्व, अपनी बीस वर्ष की अवस्था में, मोती ने पूरे एक वर्ष का मौन-व्रत धारण किया था।

यहाँ जोगी-जमात के साथ केवल उस चौबीस घंटे के मौन-व्रत ने उसका मन उबा दिया। कहने को मौन-व्रतधारी, पर सब-के-सब कूँ-कूँ, हूँ-हूँ करके आपस में खूब बातें करते, और लगातार गाँजा-चरस की चिलम फूँकते रहे थे।

मगहर से उत्तर, कठिनइया नदी के किनारे, एक टीले पर उन जोगियों का मठ था। चैत लगते-लगते कठिनइया बिलकुल सूख जाती थी, इसलिए जिस रात गाँव में होलिका जलती थी, उसी रात को मठ में जलती हुई धुईं छोड़कर, जोगी अपने गुरु महाराज के साथ चलकर मनवर और कुआनो नदी के संगम, लालगंज पहुँच जाते। दो-चार रात लालगंज के श्मशान घाट पर बिता कर वे कुआनो नदी पार कर गोसाईंपुरवा की ओर चले आते थे और शंकरजी के उस टूटे-से मन्दिर के पास, नीम के पेड़ के नीचे, उनकी धुईं रम जाती थी।

गुरु महाराज को छोड़कर कुल तीन जोगी थे। बड़े जोगी का नाम तारानाथ था, जिसने पिछले पाँच वर्ष से अन्न और नमक त्याग रखा था। दूसरा जोगी चन्द्रनाथ था, जो गत चार वर्ष से कभी बैठा नहीं था और तीसरा जोगी मौनीदास था, जो पिछले दो वर्ष से मौन-व्रत लिये था।

गुरु महाराज का तेज अपार था। मजाल क्या कि कोई उनसे अपनी आँख मिला ले! किसी की आँख उनसे मिली नहीं कि वह अपना सिर पीटता हुआ अपने सारे पाप एक साँस में उगल दे। हर नवरात्र में एक बार, वह अपना सिर काटकर देवी के सामने रख देते थे। अद्‌भुत प्रताप था उनका! धुईं से एक चुटकी राख जिसको मन भर गाली देकर दे देते, उसकी सारी मनोकामना पूर्ण! अपूर्ण सिद्धि प्राप्त थी गुरु महाराज को। जिसको जो कह दिया, वह सोलहों आने सत्य!

गुरु महाराज की वही शक्ति, वही सिद्धि प्राप्त करने वहाँ मोतीदास आया था।

चैत की नवरात्र का वह पहला दिन था। सामूहिक मौन-व्रत की समाप्ति के बाद जोगियों ने भोजन किया।

मौनीदास ने नीम के डाल पर रस्सी का झूला डाला। नीचे देवीचन्दन की लकड़ी बाँधकर उस पर मोतीदास ने अपने अँगरखे और अँचले को तह बनाकर रख दिया, और उनको लाल गोट से चन्दन की लकड़ी में कसकर बाँध दिया।

जोगी का झूला हवा में तैर गया।

उधर सूर्यास्त हो रहा था। वही क्षण था मोतीदास की कठोर साधना के प्रारम्भ का।

मोतीदास ने उसी घड़ी परम सिद्धि के लिए, शून्य में समाधि और

गगन महल में पहुँचने के लिए हठजोग आरंभ किया था। कमर में मूँज की करधन, लोहे की सिंकड़ा का लंगोट, बदन-भर में भभूत, माथे पर गुरु महाराज का तिलक-टीका।

इस जोगी-रूप में मोतीदास ने गुरु महाराज के चरणों में साष्टांग प्रणाम किया; उनके पैर के नाखूनों को अपनी आँखों से स्पर्श किया। फिर तीनों शिष्य जोगियों की चरण-धूलि को अपने माथे चढ़ाया।

उधर आम के बाग के पीछे उस दिन का सूरज डूबने लगा और देविमंत्र-गान प्रारंभ किया। मोतीदास निश्चल, अपने दोनों पैरों पर खड़ा, हाथ जोड़े, आँख मूँदे शक्ति की आराधना करने लगा। उस समय लालगंज, गोसाईंपुरवा और आस-पास की बहुत सी श्रद्धालु जनता वहाँ मोतीदास के दर्शन के लिए आ खड़ी हुई थी। इस क्षण से यह मोतीदास, यह पच्चीस वर्ष का नौजवान, जो इस भाँति अपनी दाढ़ी-मूँछ रखकर परम वैरागी हुआ है, अनवरत खड़ा ही रहेगा। गुरु महाराज ने दर्शकों के सामने मोतीदास को उपदेश दिया, "सुनो मोतीदास! आतमा को शून्य में करके और शून्य को आतमा में करके तुम सच्चे जोगी बनने का प्रयत्न करो! शून्य अर्थात् समाधि, जिसे प्राप्त करके तुम्हारी आतमा गगन महल में पहुँच जायगी, वहाँ उसे अमृत रस पीने को मिलेगा।" सारी उपस्थित जनता इस तरह मंत्र-मुग्ध होकर गुरु महाराज के उस आदेश को सुन रही थी, जैसे उस वाणी का पूरा मर्म मिल रहा हो।

और मोतीदास! उस पर तो गुरु का शब्द सीधे डाला हो जा रहा था। आँख मूँदे श्रद्धानत वह मानो गगन महल की सीढ़ियों पर गुरु-कृपा की डोर पकड़े चढ़ा चला जा रहा था।

मोतीदास गुरु के उस उपदेश का अर्थ नहीं समझ पा रहा था। पिछली बार भी उसने अर्थ नहीं समझा था। किन्तु इस बार उसे गुरु

की वाणी की महिमा अवश्य अनुभव हो रही थी।

रात सोने से पूर्व गुरु महाराज ने मोतीदास से फिर कहा, "सुनो बेटा मोतीदास! अब तुम्हारा जोग चूँकि शुरू हो गया है, इसलिए मैं तुम्हें सचेत कर दूँ। आज से ठीक तीन वर्ष पूर्व तुम्हारी ही तरह एक जोगी यहाँ यही हठजोग करने आया था। तुम्हारी तरह उसके मूँछ-दाढ़ी नहीं थी, किन्तु था वह भी बड़ा तेजवान।····हुआ ऐसा कि चौबीस घंटे भी उसे खड़े नहीं बीते थे कि वह रात के पिछले पहर यहाँ से एकाएक कहीं गायब हो गया। प्रातः—काल उसे यहाँ न देखकर मेरे ये शिष्य जोगी बहुत दुखी हुए, किन्तु मुझे उस ग़रीब पर बहुत हँसी आई। ऐसे ही लोगों को देखकर मेरे गुरु महाराज अक्सर चेतावनी देते हुए कहा करते थे,

'जोग दुहेली शक्ति की, नहिं कायर का काम,
सीस उतारै हाथि करि, सो जोगी बड़-नाम!'

कायर और जोगी!" यह कहते हुए मोतीदास के गुरु महाराज खिलखिलाकर हँस पड़े।

मोतीदास को लगा कि गुरु महाराज की हँसती हुई आँखें उसे पकड़ने को दौड़ रही हैं। अभी उन आँखों से मोती की आँखें मिली नहीं कि वह अपना सिर पीटता हुआ अपने पाप को उगल देगा। तब क्या होगा? 'गुरु से कपट मित्र से चोरी; कि होय निर्धन, कि होय कोढ़ी!' मोतीदास की आँखों से निःशब्द आँसू ढलने लगे। उसने फफककर कहा, "अब मैं आपसे नहीं छिपाऊँगा। वह कायर जोगी मैं ही था महाराज! अपने को आपसे छिपाने के लिए ही मैंने यह दाढ़ी-मूँछ बढ़ा रखी है। सोचा था, यह मैं आपसे तब बताऊँगा, महाराज, जब मुझे सिद्धि प्राप्त हो जायेगी। पर यह कपट है, और कायरता भी। मुझे क्षमा करिए, महाराज जी, मुझ पर कृपा कीजिए!"

शेष जोगी आश्चर्य चकित होकर मोतीदास की ओर देखने लगे, किन्तु गुरु महाराज ने बड़े प्रेम से बढ़कर मोतीदास को अपने अंक में भर लिया।

आधी रात का समय। सब सो गए। जोगी चन्द्रनाथ भी अपने झूले के सहारे खड़ा-खड़ा ही सो गया—झूले के पीड़े पर अंक से लिपटा हुआ, हाथ में डोर पकड़े, पैर धरती पर जमाये हुए। किन्तु मोतीदास अपने झूले से दूर खड़ा उसे देख रहा था। उसकी आँखों में ज़रा भी नींद न आ रही थी। पछुआ हवा बह रही थी। उसकी गति से मोतीदास का हल्का-सा झूला अपने-आप नाच उठता था।

यह झूला मोह है। इसे छूकर मैं निर्बल हो जाऊँगा। मोह जोगी का शत्रु है, माया ठगनी का भाई है यह।

मोतीदास ने झूले की ओर से अपना मुँह फेर लिया और ठीक पश्चिम की ओर देखने लगा। दिशाओं में रात का सूनापन भर चुका था। कहीं भी कोई दीपक नहीं जल रहा था कि जिसे देखते हुए वह खड़ा रह सके। गुरु महाराज ने उपदेश दिया है, आत्मा को शून्य में करके और शून्य को आत्मा में करके तुम सच्चे जोगी बनो, मोतीदास! ····पर शून्य क्या है? और यह आत्मा क्या है, गुरु महाराज? शून्य में आत्मा....और आत्मा में शून्य?

गुरु महाराज कब के सो गए थे। मोतीदास ने अपने पूरे आत्म-बल से स्वयं से पूछा—शून्य क्या है, मोतीदास? यह आत्मा क्या है? बोल मोतीदास? आत्मा में शून्य····

मैं क्या बताऊँ जोगी? मेरा नाम मोती शुक्ल है। कुलीन ब्राह्मण, उच्च परिवार। तीन बार हाई स्कूल में बैठा, पर हमेशा फेल होता रहा। मेरा बभनौली गाँव, परगना नगर, ज़िला बस्ती। सारे गाँव में शुकुल ब्राह्मण, शेष घर गौतम ठाकुर। गाँव के पश्चिम

में दुर्गा का मन्दिर, पूरब में कुआनो नदी, उसके तट पर भैरों का खंडहर। माँ का मैं इकलौता पूत····माँ मेरी सफलता के लिए दुर्गा-जी, भैरों बाबा की पूजा के लिए घर से बाहर जाना चाहती थीं, लेकिन गाँव में कितना परदा ! और मेरे पिताजी कितने क्रोधी, कट्टर ! मुझे गाली, मार और माँ की फ़ज़ीहत। माँ रो-पीटकर चुप हो जातीं। पिताजी दरवाज़े पर बैठे हुए दिन-रात खैनी फाँकते और आल्हा गाते। तीसरी बार भी जब मैं इंट्रेंस में फ़ेल हो गया तो उसी जून के महीने में पिताजी ने गुस्से में आकर मेरी शादी कर दी, चेंचाई के मिसिर के घर। इतने बड़े मिसिर की कन्या, मेरी धर्मपत्नी ! मैं अपने मुँह से क्या नाम लूँ उसका। जैसा सुन्दर रूप, वैसा ही गऊ-स्वभाव, वैसा ही नाम —गंगोत्तरी। पतोहू का मुँह देखते ही माँ ने कहा, मेरे बेटे की साक्षात् लक्ष्मी आ गई ! पिताजी ने कहा, कायर पूत !····निर्बुद्धि····न हाई स्कूल न संस्कृत का ज्ञान, ऐसे अयोग्य के हाथ लक्ष्मी भी मिट्टी हो जाएगी।

मैं कई बार घर से भागा, पर कहीं ठौर न लगा। घर पर पिताजी के मारे रह नहीं सकता था। माँ मेरे लिए रोती थीं। गऊ पत्नी सदा चुप रहती थी—घर के भीतर बन्द, घर में भी परदा, परदे में भी घूँघट। बभनौली गाँव का ऐसा चलन ही था। गाँव में उस साल चेचक की बड़ी तेज़ बीमारी फैली। भगवती ने मेरे घर में सबको छोड़कर केवल माँ को उठा लिया, जैसे भगवती ने भगवती माँ को अपने संग कर लिया। माँ की आत्मा मेरे लिए प्यासी ही चली गई। न नाती का मुँह देखा, न मेरी कोई सफलता। मेरे बड़े भाई इन्दर सुकुल खेती-बारी का पूरा काम अपने सबल हाथों में सँभाले हुए थे। उधर हर दूसरे साल भौजी के बच्चा पैदा होता था। मेरा छोटा भाई कैलाश इस साल हाई स्कूल सैकंड डिवीजन पास हो गया, अब उसे इंटर पढ़ने बस्ती जाना था। पिताजी मुझे देखते ही कैसी कटुता से

कहते, 'सकल पदारथ यहि जग माहीं, कर्महीन नर पावत नाहीं।'

कैसा नर ? कैसा कर्म ?

मैंने ईश्वर की भक्ति की, शक्ति की उपासना की, हठयोग किया। अन्न-त्याग, वाणी-त्याग कर देखा। ऐसे सिद्ध पुरुष गुरु की शरण आया। गुरु ने बताया, शून्य माने ओंकार। और उस ओंकार में पाँच खण्ड, पाँचों में पाँच शक्ति-देवता। तारक में ब्रह्मा, दण्ड में विष्णु कुण्डली में रुद्र, अर्धचन्द्र में ईश्वर और सबसे ऊपर वाले बिन्दु में सदाशिव का वास। पर मेरी समझ में कुछ नहीं आया, कुछ नहीं समझ में आया। मैं समझना चाहता था। शब्द की चोट मेरे भीतर लगती थी, पर कहाँ लगती थी, क्या लगती थी, मैं उसे पकड़ नहीं पाता। फिर मैं भागा; कहाँ, क्यों भागा, मैं कुछ नहीं जानता। कुछ नहीं, कुछ नहीं !....

रात्रि के उस पिछले पहर में, अचल, अवलम्बहीन अपने पैरों पर खड़े हुए जोगी मोतीदास ने अपने उस मोती शुकुल से कहा, "सुनो मोती, तुम दुविधा की थूनी पर माया की बड़ेर रख कर मोह का छप्पर डालते हो, तभी तुम्हारी संकुचित डरी हुई आत्मा उस घर के मिट्टी के बरतन में बन्द रह जाती है। तुम ज्ञान की आँधी और विवेक की अग्नि से अपने उस झूठे घर में आग लगा दो; फिर देखो—गगन महल तुम्हारे सामने है।"

मोतीदास के हठजोग का आज चौथा दिन है। उसके सारे शरीर में जलन फैली हुई है। सिर मानो उसके शरीर में नहीं है, और कभी उसे ऐसा लगता है, जैसे वह केवल सिर-ही-सिर है—घूमता हुआ, वजनी, बहुत भारी। जोगी मौनीदास ने मोती के सिर पर आज गीली मिट्टी थोप दी है, शरीर-भर में पोतनी मिट्टी लगा दी है, और बार-बार उसे पानी पिलाता है। दूसरा जोगी चन्द्रनाथ, जो गत चार

वर्ष से कभी बैठा नहीं है, जिसका जोग अखण्ड है, वह मोतीदास से कहता है, "लो, तुम गाँजा पिओ। जोगी को पहले अपना शरीर जलाना होगा। इसमें आग लगा कर एक दम स्वाहा कर देना होगा, वरना इस शरीर के पोछे से आत्मा उड़ कहाँ पाएगी! शरीर व्याधि-भंडार है, मोह माया-सागर है। इसे फूँक दो, मोती! देखो न, सभी जोगी तो हरदम चिलम की अग्नि से अपने को फूँकते रहते हैं। गुरु महाराज तक पीते रहते हैं। हर बार आम की पत्ती की नयी चिलम और नयी अग्नि। बम शंकर! शक्ति महादेवी! आठहू पहर मतवाल! आठहू पहर की झाक!"

"नहीं, नहीं, मैं चिलम नहीं पिउँगा।"

"फिर क्या करेगा?"

"जोग करूँगा, सिद्धि प्राप्त करूँगा।"

"बिना शरीर फूँके?"

शरीर को फूँकूँगा, पर गाँजा-चरस से नहीं, तप से, उपवास से, संयम से।"

"मोतीदास, तेरी कुंडलनी सुषुप्त है।"

"यह शुषुप्त क्या है? मुझे बताओ, चन्द्रनाथ! नहीं बताओगे? ....कि जानते ही नहीं?"

नवरात्र बीत गया। चैत पूर्णमासी को लालगंज का मेला लगेगा, झकझोर मेला, तीन दिन, तीन रात का मेला। गोरखपुर से लेकर गोंडा, बहराइच, लखनऊ तक की दुकानें आएँगी। इधर उत्तर बाँसी से लेकर दक्षिण टाँडा, अकबरपुर, फैज़ाबाद तक के लोग आयेंगे। लालगंज के चारों ओर दस कोस की परिधि के सारे गाँवों की स्त्रियाँ, मर्द, बच्चे, बूढ़े, जवान मेला देखने आयेंगे। सारा बभनौली गाँव इसमें टूट पड़ेगा। कम-से-कम दस परदेदार-ओहार डली गाड़ियाँ मेले

में आयेंगी।....मोतीदास की धर्मपत्नी को भला कौन लाएगा? वह नहीं आयेगी। पिता जी आ सकते हैं। हो सकता है, मोतीदास के बड़े भैया इन्दर शुकुल भौजी को लेकर आएँ। पर कठिन ही है, कारण, पिता जी की कट्टरता और क्रोध के सामने वे बेचारे क्या पैर बढ़ा पाएँगे?

शरीर की जलन तो थी ही। आज मोतीदास के पेट और कलेजे में जैसे जलता हुआ तवा रखा हुआ हो। सारे पेट में मरोड़, सारी अंतड़ियों को भीतर-ही-भीतर जैसे कोई गार रहा हो। चों-चों का स्वर यह कैसा वायु-प्रकोप है! मोतीदास को विह्वल देख कर बड़े जोगी, तारानाथ ने उसे स्नेह से छूते हुए कहा, "तुम्हारी साधना अब सफल है। समाधि तुम्हारी अब लग चुकी है। समझो, यह तुममें अनहद नाद हो रहा है। भाग्यवान हो तुम, मोती!"

"अनहद नाद यही है?" मोती ने पूछा। सारे जोगियों ने उसका समर्थन किया। मोतीदास का मुख तिक्त हो रहा था। उसने चिल्ला-चिल्लाकर कहना चाहा, झूठ है।....झूठ है यह! पर मोतीदास ने अपने-आपको सँभाल लिया। बड़ी देर तक वह झूले पर अपना जलता हुआ माथा टेके हुए चुपचाप खड़ा रहा। एकाएक उसने जोगियों से पूछा, "अनहद नाद क्या है?"

जोगी तारानाथ मोतीदास पर झल्ला उठा। गुरु महाराज से शिकायत हुई—इस मोतीदास को क्या हुआ है? हर चीज़ को पूछता है, क्या है? क्या है? अब अनहद नाद को भी पूछता है, क्या है यह?

गुरु महाराज ने पूछा, "मोतीदास, तुम क्या हो?"

"मैं नहीं जानता, महाराज! यही तो मैं जानना चाहता हूँ कि मैं क्या हूँ।"

"इसे तब तक कोई नहीं जानता, जब तक वह अपने शरीर से ऊपर उठकर शून्य में समाधि न लगा ले। जब जोगी गगन महल में पहुँचेगा तो उसके सारे प्रश्न अपने-आप उसी क्षण हल हो जाएँगे।"

"गगन महल क्या है?"

"चुप रहो!"

"अनहद नाद क्या है?"

"समझने की कोशिश करो!" गुरु महाराज ने लाल-लाल आँखें दिखाकर कहा, "कुण्डलनी जब ऊपर उठती है तब उससे 'नाद' होता है। वही तुममें हो रहा है। नहीं समझे? सुनो! अर्थात् जो नाद समूचे संसार में अनाहत रूप से हो रहा है, जब वही तुम्हारे भीतर होता है, तब उसी को....."

"इससे क्या होगा?"

"सुनो! खबरदार! गुरु की आज्ञा है, अब तुम चुप हो जाओ!"

लालगंज का मेला चैत की पूर्णमासी को है। आज से चार ही दिन और हैं। तीनों पार मेले की तैयारी पूरी हो चुकी है। तीनों ओर तीन थानेदारों की ड्यूटी लग चुकी है। हज़ारों की संख्या में बीस-बीस कोस पैदल चलकर भिखमंगे इकट्ठे हो गए हैं। कितने साधु, कितने लूले-लंगड़े, कोढ़ी-अपाहिज! बस्ती ज़िले का कलक्टर इस बार खुद मौजूद रहेगा मेले में, यह खबर सारे जवार में फैल चुकी है। इस साल भेड़ें लड़ेंगे, कलक्टर इनाम बाँटेगा। बैलों का कम्पटीशन होगा। बिरहा और फाग की बढ़ी होगी; हर जीतने वाले को इनाम मिलेगा। और इस साल मेले में लाठियाँ नहीं चलेंगी। बहू-बेटियों को कोई ज़बरदस्ती भगाकर नहीं ले जा सकता। जादू-टोना करने वाले भी पकड़े जाएँगे, हाँ!

अगले दिन मोतीदास का पेट शान्त था, पर उसके दोनों पैर थर-

थर काँपने लगे थे। वह झूले की रस्सी को बहुत मज़बूती से पकड़े हुए खड़ा था।

"अब क्या होगा गुरु महाराज? लगता है, अब बेहोश होकर गिर जाऊँगा।"

"नहीं बेटा मोतीदास, धैर्य रखो! तुम्हारी सिद्धि समीप है। शरीर का सहारा लेकर माया तुम्हें ठगना चाहती है। पर जोगी की साधना भंग न होगी, विश्वास दृढ़ करो मोती! तुम्हारे भीतर का 'नाद' अब बन्द हो चुका है। इसका अर्थ यह है कि तुम अब गगन महल की आधी सीढ़ियाँ पार कर चुके।"

"कैसे महाराज?"

"बेटा मोती, जैसे-जैसे मन शुद्ध, स्थिर माया-रहित होता है, वैसे-वैसे इन शब्दों का सुनायी देना बन्द हो जाता है।"

"पता नहीं महाराज, मेरा तो पैर थर-थर काँप रहा है। लगता है, बेहोश होकर गिर पड़ूँगा।"

"घबराओ नहीं, हम ऐसा न होने देंगे। इसका उपाय है।"

संध्या-समय जोगी चन्द्रनाथ के निर्देश पर जोगी तारानाथ ने मोतीदास के दोनों पैरों में चारों ओर से, पंजे से लेकर जाँघ तक, कड़े बाँस की खपच्चें बाँध दीं, ऐसे कि कोई ऐंठ ही न सके।

अगले दिन सुबह होते ही जोगियों ने देखा, मोतीदास नीचे ज़मीन पर बिलकुल चित गिरा हुआ था। उसका पूरा शरीर जल रहा था, आँखें बन्द थीं, दोनों हाथ निर्जीव-जैसे लग रहे थे।

उधर लालगंज के मेले में यात्री आने शुरू हो गए। फकीरों के डफले बजने लगे। भिखमंगों की खंजड़ी चटक उठी। चारों ओर ढोल धमकने लगे। औरतों से भरी बैल-गाड़ियाँ उत्तर-दक्खिन, पूरब-पश्चिम से धीरे-धीरे आने लगीं। जोगियों की जमात के पास गाड़ियों

की एक गाती हुई कतार गुजरने लगी :

जननी बिनु राम अब न अवध में रहब····

उस कतार की अन्तिम बैलगाड़ी में कोई स्त्री अकेले कंठ से चौताल गा रही थी :

'सखी ऐसे निठुर बनबारी सुरतिया बिसारी····'

तीनों जोगियों ने मिलकर मोतीदास को ज़मीन से उठाकर छाती के बल झूले पर लिटा दिया और उसके दोनों हाथ झूले की रस्सी से बाँध दिये गए, ताकि वह असहाय ज़मीन पर न चू पड़े। दस औरतों का एक दूसरा झुण्ड गाता हुआ उसी रास्ते में गुज़रने लगा :

अँचरन सुरुज मनइबै तबै अपने राजा के पइबै···

चैत पूर्णिमा।

पास-पड़ोस और विशेषकर परगना नगर के यात्री मनवर और कुआनो नदी के बीच में गोसाईं पुरवा में ही भर गए। जमात भी मेले के इस आँचल से छू गया।

लोग मोतीदास के दर्शन के लिए प्रातःकाल से ही वहाँ पहुँचने लगे।

पर उस जोगी जमात में मोतीदास न था।

"जोगी लोग! मोतीदास के दर्शन कहाँ होंगे?"

"भाई सुनो, जोगी-वैरागी का पता कौन बताए! वह गगन महल का यात्री ठहरा, चित्त-रूपी कमल-दल-रस का पान करने वाला। मन में ही उस जागो का दर्शन करो, भाई! शोभा का समुद्र जो यह महल है न, अन्तःकरण, जोगो का निवास वहीं है।"

मोतीदास! नहीं-नहीं-नहीं! मोतीदास नहीं, मोती सुकुल, सुनो मोती, अब आँखें खोलो! यह तुम्हारी जन्मभूमि बभनौली गाँव है। यह तुम्हारे ही घर का एक हिस्सा है, जहाँ तुम लेटे पड़े हो। तुम्हारे कट्टर पिता रामचन्द्र सुकुल ने तुम्हें अपने घर से अलग कर दिया है। तुम्हारी पत्नी गंगोत्तरी ससुर से ऊपर उठकर बैलगाड़ी पर चढ़कर लालगंज के मेले में गयी। क्यों गयी वह? यह मजाल? उसे कैसे पता चला कि तुम उस जोगी-जमात के साथ लालगंज के तीर पर थे? और उसे यह कैसे पता हुआ कि तुम वहाँ बेहोश बीमार पड़े हो? ज़रूर यह तुम दोनों की मिली-भगत थी।

गुरु से तर्क, गुरु से अविश्वास और पिता से कपट····बड़े जोगी बनने चले थे! पाप और कपट ने सब खण्डित कर दिया न! और दैवी दण्ड देखिए, दोनों पैर लुंज—लकवा मार गया।

मोती ने आँख खोलकर देखा। यह छोटा-सा हिस्सा उसका घर है। उसे बँटवारे में पन्द्रह बीघे खेत मिले हैं। ससुराल से मिली हुई उसकी गाय और वे दोनों बैल सामने बँधे जुगाली कर रहे हैं। मोतीदास को सिद्धि, उसका अधिकार और आत्म-सम्मान मिल गया।

"सुनो, मेरा जोग सिद्ध हो गया! मैं गगन महल में पहुँच गया!

"मैं साक्षात् माँ भगवती, माँ शक्ति को देख रहा हूँ। मेरी साधना सफल हो गई, माँ!"

गंगोत्तरी शरम से गुलाल हो गई, धत्, मैं माँ थोड़े ही हूँ, मैं तो तुम्हारी····

अँरचन सुरुज मनइबै तबै अपने राजा कै पइबै····

वह मैं पा गई। मेरे ईश्वर, तुझे मेरी सौ-सौ पूजा!"

"माँ सुनो!"

"तुम पहले मेरी सुनो!" गंगोत्तरी ने गंभीरता से कहा, "चैत से आज चार महीने हो गए, मैंने तुमसे कुछ नहीं कहा। सारा गाँव मेरी

हँसी उड़ाता रहा, मैं चुप रही। सोचती थी, तुम अच्छे हो जाओगे तो अपने-आप से तुम्हारी यह बोल छुट जायगी। सोचो तो भला, मैं तुम्हारी माँ हूँ ? मैं कहाँ धँस मरूँ ?"

मोती ने उदास होकर गंगोत्तरी को देखा।

गंगोत्तरी ने सँभाल लिया, "पर हाँ, तुम अभी पूरे तन्दुरुस्त कहाँ हुए हो !"

"सच ?"

"हाँ।"

सावन-भादों भी खूब बरसकर बीत गया।

"अब मैं बिलकुल अच्छा हो गया हूँ, माँ ! अब मैं खेती-गृहस्थी का काम सँभालूँगा।"

"अपनी यह बोली तुम नहीं बन्द करोगे ?" गंगोत्तरी ने उदास होकर कहा, "तो तुम्हारे लिए सब-कुछ वही जोगी हैं, मैं कुछ नहीं हूँ ?"

"नहीं-नहीं, वे जोगी धूर्त हैं, माँ ! उन्हें माँ का दर्शन कभी नहीं हो सकता। तुम्हीं तो सब-कुछ हो। गगन महल की वासिनी माँ, तुम !"

गंगोत्तरी ने मोती के मुख पर अपना काँपता हुआ हाथ रख दिया।

"तुम अभी पूरे स्वस्थ नहीं हो। तुम्हारे ये पैर····"

"ये पैर भी अच्छे हो जाएँगे, माँ ! तुम्हारी दया-दृष्टि चाहिए।"

"छीः-छीः ! तुम्हें मुझे माँ कहते लाज नहीं आती ? फिर अगर कहा तो····"

गंगोत्तरी फफककर रो पड़ी।

क्वार भी बीत गया। खंजन पंछी समुद्र-तट से उड़कर गाँव-देश में आ गए। गऊ-गोबर के ऊपर बैठा हुआ खंजन का जोड़ा 'चिहुँ-

चिहुँ' कर उठा। कितना शुभ है गऊ-गोबर के ऊपर खंजन-जोड़े को देखना !

गंगोत्तरी ने आकाश की ओर अपना आँचल फैला दिया। खंजन उत्तर दिशा की ओर उड़ गए।

"माँ ! ओ माँ !"

"आँसुओं की माला जोगी नहीं जानेगा, जोगी तो वैरागी हो गया। तो मैं भी वही हठजोग करूँगी। अन्न-पानी भी छोड़ दूँगी। यदि जोगी को माँ मिल गई तो माँ को उसका पति कैसे नहीं मिलेगा ? और पति के पैर क्यों नहीं ठीक होंगे ? ऐसा हठजोग करूँगी कि···· पार्वतीजी ने भी तो जोग-तप ही किया था।"

गंगोत्तरी ने सोचा, खंजन का शुभ दर्शन किया है, प्रतीक्षा कर देखूँ, उसका फल मुझे अवश्य मिलेगा।

एक दिन गंगोत्तरी पति के अशक्त पैरों में कोई दवा मालिश करने के लिए पायताने बैठने लगी।

मोती ने बड़े ज़ोर से हाथ हिलाते हुए कहा, "मेरे पायताने मत बैठो, माँ !"

गंगोत्तरी ने अनसुना कर मोती के पैर पकड़ लिए।

मोती चिल्ला उठा, "माँ, ऐसा न करो ! तुम आशीर्वाद दो, मैं इसी क्षण उठ खड़ा हूँगा।"

"पर मैं वह जोगियों की माँ नहीं हूँ न !"

गंगोत्तरी आँचल में अपना मुँह छिपाये वहाँ से चली गई।

एक दिन मोती ने बिलकुल शिशु-स्वर में पुकारा, "माँ....माँ !"

कोई उत्तर न मिला। मोती ने करवट अदल-बदल कर दाएँ-बाएँ देखा, कहीं गंगोत्तरी न दिखी। फिर किसी तरह बैठ कर उसने अपने पीछे के बरामदे में देखा। बरामदे में वही जोगियों जैसा झूला लटक

रहा था। गंगोत्तरी डोर पकड़े, अविचल पूजा-भाव में खड़ी थी, आँखें जैसे ध्यानावस्थि थीं और उनमें से कुछ बरस भी रहा था।

यह देखते ही मोती सिर से पैर तक काँप गया, "नहीं-नहीं, माँ! ऐसा मत करो, माँ! वह सब झूठ है....छल है!"

मोती गिर पड़ेगा, गंगोत्तरी उसे संभालने पास चली आई और दृढ़ स्वरों में पूछा, "झूठ है वह?"

"हाँ, झूठ है।"

"तो वह माँ भी झूठ है। मैं तुम्हारी माँ नहीं हूँ। मैं तुम्हारी...."

"मेरी परीक्षा मत लो, माँ!"

फिर तो वही सत्य है, जिसे तुम झूठ कह रहे हो, क्योंकि यह भाग्य हीन, असगुनी माँ उसी से निकली है।"

सोते-सोते ठीक अर्ध-रात्रि के समय मोती की आँखें सहसा खुल गईं, जैसे किसी ने उसे झटक कर जगा दिया हो।

पीछे से बहुत हलकी-हलकी रोशनी आ रही थी। बरामदे में जैसे घी का दीया जल रहा था। गंगोत्तरी झूले पर अधर में लटकी हुई पेट के बल निष्क्रिय पड़ी थी।

देखते ही मोती के मुख से एक चीख निकली। उसने दौड़ कर गंगोत्तरी को झूले से पकड़ लिया।

"गंगा! गंगा!"

और उसे बाँहों में उठाये हुए मोती आँगन में आ गया।

निष्प्राण जोगिनी गंगा की खुली हुई आँखों से जैसे चाँदनी बरस रही थी। वह रात कार्तिक की पूर्णिमा थी।

चिरई गावँ

चिरई गावँ की सुधि आते ही हँसी आती है। सौ घरों से ऊपर की बस्ती ब्राह्मण, ठाकुर और चमार और पूरे गाँव में एक भी साबूत मर्द नहीं।

गाँव भर में सब औरतें ही औरतें। वही खेती-बारी कराने वाली, ढोर-डाँगर चराने वाली, यहाँ तक कि थाना-पुलिस और कचहरी में जाने वाली।

गाँव के सारे मर्द लोग विदेश रहते थे। बम्बई, कानपुर, अहमदाबाद, कलकत्ता, हैदराबाद और बुटवल की नौकरी में। परदेशी पति और पुत्र लोग परदेश से कमा-कमा कर मनीआर्डर करते और चिरई गाँव की औरतें घर में बैठ कर मजे मारतीं और पास पड़ोसियों से खूब लड़तीं झगड़तीं। साल दो साल में परदेशी लोग क्रम से अपने-अपने घर आते और दस-पंद्रह दिनों में गृहस्थी बसा क परदेश चले जाते।

बहुत दिनों से चिरई गाँव की यही रीति थी।

गाँव के चमार—बूढ़े और लड़के—ब्राह्मण-ठाकुरों के घर हलवाही करते। यहाँ मज़दूरी करने के लिए आस-पड़ोस के गाँवों से मर्द आते थे। चिरई गाँव का सिवान चंदोताल की वजह से बहुत

छोटा भी था।

इधर पिछले पाँच-छह वर्षों से चिरई गाँव में चोरी-नक़ब की घटनाएँ अक्सर होने लगी थीं। चिरई गाँव की लाज-मर्यादा की रक्षा का भार चार औरतों ने अपने सिर ले रखा था—बल्कि गाँव की औरतों ने मारे डर के उन्हें दे रखा था। पहली थीं लड़ाका बुआ, दूसरी टोना काकी, तीसरी खूना दीदी और चौथी लठैता पँड़ाइन। इन चारों मर्दानी औरतों की शक्ति और प्रभाव का अपना-अपना इतिहास था।

लड़ाका बुआ अभी तीस साल की जवान औरत थीं। सैइदलपुर में ब्याही गयी थीं। मर्द बम्बई में छपाई का काम करता था। चार-चार साल तक घर नहीं आता था। आखिर, कई साल हुए ये सास-ससुर का मुँह तोड़ कर ससुराल से नैहर आ बसीं।

टोना काकी विधवा थीं। चालीस साल की अवस्था। गाँव-जवार इनसे यह डरता था कि काकी टोना-जादू करती हैं।

और खूना दीदी के बारे में यह प्रसिद्ध है कि उन्होंने ससुराल में सगे देवर को ज़हर देकर मार डाला था। कहा जाता है कि उसने पति के प्रवास से लाभ उठाने के अपने प्रयत्न से हार कर उस पर कलंक मढ़ देना चाहा था। और लठैता पँड़ाइन की तो कथा ही निराली थी। आज से चार साल पहले मटियारा गाँव के कुछ अहीरों ने आधी रात को पँड़ाइन की ऊख काटनी चाही थी। पँड़ाइन ने अपने परदेशी पुत्र का भेष बना कर उनसे लाठी चलायी थी और अकेले उन चोरों को मार भगाया था।

चिरई गाँव के परदेशी, औरतों को अपने संग कभी परदेश नहीं ले जाते थे। ऐसा चलन ही था उस गाँव का। बूढ़ी औरतें और पुरुष कहते थे, गाँव पर ऐसा ही कुछ श्राप था। कारण जो भी हो, 'जब तक मर्द कमासुत, तब तक पिया परासुत'—यह गाँव भर के मुख पर

अंकित था।

और ऊपर से चिरई गाँव में व्याप्त एक दूसरा आतंक! पूरब के सिवान में, जिधर से गाँव से बाहर जाने का एकमात्र रास्ता था, वहाँ सुबह, दोपहर, शाम पीपल के एक पेड़ पर एक कौवा बोलता था—गाँव गप्प। गाँव गप्प! चिरई गाँव वाले उस कौवे को अपना देवता मानते थे और कहते थे कि यदि कोई पुरुष अपनी स्त्री को लेकर विदेश जायेगा तो गाँव गप्प हो जायेगा। और रात को उस पीपल पर एक टुकटुइयाँ चिड़िया बोलती थी—टुक! टुक! टुक!

यह चिरई गाँव की रात भवानी थी—जो चिरई गाँव की औरतों के सुहाग की रक्षा करती थी और गाँव छोड़ कर पति के सँग जाने वाली स्त्री के सुहाग को 'टुक' से तोड़ देती थी—जैसे कच्चे घड़े को कोई तोड़े।

चिरई गाँव से बाहर जाने का मार्ग था केवल वही पूरब का सिवान, जो एक डहर से जुड़ा था। यह डहर गोरखपुर और बस्ती जाने वाली सड़क तक जाता था। यह वही गोरखपुर-बस्ती वाली सड़क है जो इस गाँव के पुरुषों को देश-विदेश पहुँचाया करती थी। चिरई गाँव के शेष तीनों तरफ चंदो का गहरा ताल फैला था जो वैशाख-जेठ में भी नहीं सूखता था।

इस तरह चिरई गाँव से बाहर जाने का सिर्फ़ वही पूरब का रास्ता था, जिसके बीचोबीच सदा वह पीपल का पेड़ खड़ा रहता। दिन को उसी पर काग गोसाईं का 'गप्प गाँव! गप्प गाँव!' चलता और सारी रात टुकटुइयाँ की बोली 'टुक....टुक....टुक'!

खूना दीदी के पिता जोरावर सिंह बम्बई में काग़ज़ बनाने वाली मिल के फोरमैन थे। आज तीन वर्ष हुए, मशीन में दायाँ हाथ कटा कर वह घर बैठे हैं। खूना दीदी के वृद्ध बाबा भी अभी जीवित हैं—

अर्जुन सिंह। खूना दीदी की माँ भी घर में हैं। और एक ही भाई है अवधू, कानपुर रेलवे स्टेशन के मालगोदाम की चौकीदारी में।

आज दो साल हुए, खूना दीदी का पति विजयी सिंह बम्बई की नौकरी से हार कर पत्नी के मोह में यहीं चिरई गाँव आ बैठा है। ससुर की खेती-बारी करता है, गाँव भर की औरतों की ताने-बोली सुनता है और अपनी स्त्री का शासन सहता है।

इधर पिछले पाँच-छह साल से—जब से चिरई गाँव की स्थिति और बिगड़ गयी है, चोरी-चंडाली से, औरतों के कुशासन से, और चंदोताल के कारण हर साल बाढ़ आने से,—तब से चिरई गाँव के लड़कों की शादी होने में बड़ी कठिनाई होती रही है। बर देखने वाले पूरबी सिवान के उस पीपल के नीचे से ही लौट-लौट जाते थे।

अवधू की शादी ढाई सौ रुपये देकर ठाकुरपुर में तय हुई। खूब धूमधाम से विवाह हुआ। अवधू की पत्नी चिरई गाँव में आयी। तीसरे दिन नाते-रिश्तेदार विदा होकर चले गये। और सातवें दिन अपनी दूल्हन को रोता हुआ छोड़ कर अवधू भी कानपुर चला गया।

अवधू की दूल्हन पति के वियोग में बेहद उदास रहती थी। बहू को घर में खुश देखने के लिए उसके ससुर जोरावर सिंह सब कुछ करते थे। मारे दुलार के ससुर ने बहू का नाम 'मुन्ना' रख दिया था। पहले उसे खाना खिला कर, फिर खुद भोजन करने चौके में जाते थे। मुन्ना के लिए पान-सुपारी ससुर साहब अपने हाथ से खरीद कर लाते थे। मुन्ना को देशी बँगला पान ही पसंद था। और देशी बँगला पान मुड़ेरा बाज़ार में मिलता था। चिरई गाँव से तीन कोस दूरी का मुड़ेरा बाज़ार। जोरावर सिंह हर बाज़ार को वहाँ से पान खरीद कर लाते थे और बहू को बड़े दुलार से पुकारते थे: "आ रे मुन्ना! मुन्ना अपना पान ले!"

मुन्ना माथे पर घूँघट खींचे ससुर के पास आती थी। जोरावर सिंह पहले मुन्ना को सिर से पैर तक देखते थे। फिर कहते थे: "मेरी मुन्ना खुश है न?

मुन्ना मूर्तिवत् खड़ी रहती थी।

फिर ससुर उसकी गोरी हथेली पर बड़े धीरे से पान की ढोली रखते हुए कहते थे: "मेरी मुन्ना फिलिम की हिरोइन है।"

मुन्ना कुछ नहीं समझ पाती थी, फिर भी वह ससुर के सामने जैसे लाज से गड़ जाती थी, और अपना मुँह फेर लेती थी।

दूसरी हथेली पर फिर एक-एक सुपारी रखते थे, और कहते जाते थे: "मुन्ना मेरा बेटा है!"

पान-सुपारी बरामदे में फेंक कर एक दिन मुन्ना बहुत रोयी। सास से कह दिया, अब मैं पान-सुपारी नहीं खाऊँगी।

"दीवान से कह दो, मैं पान-सुपारी नहीं खाऊँगी!"

अगले दिन मुन्ना ने अपने पति को कानपुर चिट्ठी लिखी।

सास ने ससुर से कहा। पर ससुर ने कहा: "जब तक मुन्ना पान नहीं खायेगी, मैं खाना-पानी नहीं करूँगा।"

क्या करे बेचारी मुन्ना! सास-ससुर के डर से पान खाना पड़ा। पर तब से वह पान मुँह में डाल कर पिछवाड़े जा कर तुरन्त थूक आती थी।

एन दिन बहुत रात गये ससुर जी मुड़ेरा बाजार से घर लौटे। मुन्ना पिछवाड़े खिड़की पर खड़ी हुई निःशब्द रो रही थी। गाँव में कोई औरत दहाड़ मार-मार कर चीख रही थी। उसका पति चार साल बाद कलकत्ते से चिरई गाँव लौटा था, और आज पाँचवें दिन वह फिर अपनी औरत से जुदा हो रहा था। मुन्ना उसी औरत की तड़पती साँस में अपनी साँस मिलाये रो रही थी।

घर में ससुर जी की पुकार गूँजने लगी : "मुन्ना ! ओ मुन्ना !"

सास ने तीखे व्यंग्य से कहा : "खिड़की में खड़ी रो रही है तुम्हारी मुन्ना।"

उसी क्षण मुन्ना डर से दौड़ी हुई ससुर के सामने आयी। ससुर जी क्रोध से लाल थे और वह दामाद-बेटी का नाम ले-लेकर उन्हें गालियाँ देने लगे कि तुम लोग मुन्ना के साथ क्यों नहीं रहते ? वह रोती है तो इसकी ज़िम्मेदारी तुम लोगों पर है।

ससुर जी मुन्ना के लिए धानी रंग की साड़ी ले आये थे। सावन की पंचमी आ रही थी। मुन्ना के हाथ में साड़ी रख कर ससुर ने बहू का हाथ छू लिया। फिर कंधा थपथपाते हुए बोले : "तू क्यों रोती है रे मुन्ना ! सुन, मुड़ेरा बाज़ार में तम्बू वाला टूरिंग सनीमा आया है। पंचमी के दिन तुझे वहाँ सनीमा दिखाने ले चलूँगा।"

मुन्ना ससुर के पास से लड़खड़ाती हुई भीतर अपने कमरे में भगी और कमरा भीतर से बन्द कर फफक-फफक रोने लगी।

आज तीन महीने हो गये, मुन्ना को कानपुर से अवधू का कोई ख़त नहीं मिला। मुन्ना ने पति को अब तक तेरह ख़त लिखे थे। पहले दो ख़त उसने लेटर बक्स में डालने के लिए ससुर को सौंपे थे, और कानपुर से जब उन ख़तों का कोई जवाब नहीं मिला, तब उसने लड़ाका बुआ से विश्वास पाकर चार ख़त उनके हाथ भेजे। उन ख़तों के भी जवाब नहीं। फिर अगले तीन ख़त उसने अपनी ननद खूना दीदी के हाथ भेजे। उनके भी उत्तर नहीं। फिर अगले ख़त उसने खूना दीदी के पति विजयी सिंह के हाथ भेजे।

पर आज इतने दिन हो गये, कानपुर से 'उनका' कोई ख़त न आया। ऐसा कैसे हो सकता है ? ससुर जी झूठ कहते हैं कि वे कानपुर में अपनी नौकरी में फँसे रहते हैं। उन्हें इतनी फ़ुरसत नहीं मिलती। झूठ

है ससुर की बात। यह कोई छल है ससुर जी का।

मुन्ना हर इतवार-मंगल को गौर उठाती है, और देखती है कि गौर भगवान उसके अनुकूल हैं। अक्सर प्रातःकाल की बेला वह पति के दर्शन का स्वप्न देखती है। उनके चरण छूती है और 'वह' उसके माथे का आँचल सँभालते हुए आशीष देते हैं।

पर वह 'वह' अब तक घर आये क्यों नहीं ? मुझे इतने कष्ट में डाल कर मुझे उबारने क्यों नहीं आते ? मुन्ना के नैहर से दो-दो बार विदा कराने का दिन लेकर नाऊ-ब्राह्मण आये, पर ससुर से मना कर दिया। विवाह के बाद की पहली पंचमी और तीज—बहू को नैहर जाना चाहिए, किन्तु चिरई गाँव की रीति तो उलटी थी। जब विवाह तब गौना क्या ? पंचमी-तीज की विदाई की तो बात ही नहीं उठती।

गौर की कृपा से पंचमी के एक दिन पहले कानपुर से अवधू अपने घर आया। सुबह अवधू और अवधू के पिता जोरावर सिंह से कहा-सुनी शुरू हुई। अवधू ने पूछा कि मेरी इतनी भेजी हुई चिट्ठियाँ घर में क्यों नहीं मिलीं ? कहाँ गयीं वे चिट्ठियाँ ?

जोरावर सिंह ने सब एक घूँट में पी लिया : "मुझे क्या मालूम तेरी चिट्ठियाँ रे उल्लू ?"

मुन्ना के नाम अवधू की एक चिट्ठी महाभारत की पोथी में थी। दूसरी चिट्ठी आल्हा की पुस्तक में। इन दोनों चिट्ठियों को निकाल कर, विजयी सिंह ने उसी सुबह अवधू को चुपके से दे दी थीं।

फिर पिता और पुत्र में जम कर लड़ाई हुई। जोरावर सिंह की गालियों की बौछार से सारा चिरई गाँव गूँज उठा।

दोपहर के समय मुन्ना ने ज़बान खोल कर ससुर से कहा : "मैं अपने पति के सँग कानपुर जाऊँगी !"

"बड़ी आयी कानपुर-बंबई जाने वाली !"—ससुर ने दाँत पीसते

हुए कहा : "कोई चिरई गाँव से आज तक अपने पति के साथ बाहर गयी है, कि तू ही जन्मी है !"

मुन्ना ससुर के सामने चुप रह गयी। किंतु सारे गाँव में मुन्ना की यह बात बिजली की तरह चमक गयी। वाह रे तेरी हिम्मत ! गाँव की औरतें आपस में यह बात कर आँख-हाथ नचाने लगीं। लड़ाका बुआ, टोना काकी और पँड़ाइन ने खूना दीदी के साथ विचार-विनिमय किया।

संध्या समय मुन्ना ने पति का हाथ पकड़ कर फिर ससुर से कहा कि पति से अलग वह ज़िंदा नहीं रह सकती। उस समय दरवाज़े पर मिला-जुला कर गाँव के कुल पाँच पुरुष उपस्थित थे। बहू की यह बात सुन कर सब आश्चर्यचकित रह गये।

सास-ससुर ने कहा : "बेटा, हमने जन्मा है। तू इसे मारने वाली कौन है ?"

मुन्ना ने उत्तर दिया : "वह सुहाग मेरा है। इसके बीच में तुम खड़े होने वाले कौन हो ? मैं मरूँगी, मेरा सुहाग अमर रहेगा।"

"अच्छा तो निकालो घर से बाहर पैर !"—ससुर बायें हाथ में बल्लम लिये हुए दरवाज़े पर बैठ गया। चिरई गाँव से बाहर भागने का केवल एक ही रास्ता—वही पूरब का सिवान। शेष तीनों ओर से चंदोताल खूब गहरे में बढ़ आया था। केवल पूरबी सिवान का रास्ता—जिसके बीचो-बीच वह पीपल का पेड़, जिस पर दिन में वह कौआ बोलता है—"गाँव गप्प ! गाँव गप्प !" और रात को वह टुकटुइयाँ चिड़िया बोलती है—"टुक....टुक....टुक !"

मुन्ना रात के समय उदास पति से बोली : "वह काग गोसाईं और वह टुक-टुइयाँ इसी चिरई गाँव की पति-पत्नी हैं। इस मुदई गाँव ने उन्हें विरह में डाल कर किसी जनम में मार डाला है। काग गोसाईं

परदेशी पति हैं और टुकटुइयाँ इस गाँव की विरहिनी दूल्हन। वह टुकटुइयाँ टुक....टुक....टुक बोलती है न ! वह उसकी बोली नहीं है। वह उसके आँसू हैं जो टुक-टुक के स्वर में आज तक टपकते रहते हैं। और पति काग गोसाईं आज तक यह देखते रह जाते हैं कि उन आँसुओं को यह गाँव किस तरह गप्प करता चल रहा है।

टुक....टुक....टुक....

गाँव गप्प ! गाँव गप्प !

पंचमी की दूसरी रात को बाहर बल्लम लिये बैठे ससुर के पास पास सहसा टोना काकी आ बैठीं।

बोलीं : "ठाकुर चिंता न करो। मैं भी तुम्हारे सँग दरवाज़े पर पहरा दूँगी। मजाल क्या कि अवधू अपनी औरत को लेकर कानपुर जाय !"

ठाकुर आश्वस्त होकर प्रसन्न-मुख पलँग पर बैठ गये और टोना काकी बल्लम लिये दरवाज़े पर पहरा देने लगीं।

आधी रात के समय, घर के भीतर जब सास जी सो गयीं तभी झटपट अवधू काँपते पैरों से मुन्ना के पीछे-पीछे पिछवाड़े की खिड़की से बाहर निकला। बाहर लड़ाका बुआ और लठैता पँड़ाइन मर्दों की तरह काछ मारे और हाथ में डंडा लिये खड़ी मिलीं। चिरई गाँव के बाहर आगे-आगे सिपाही की तरह चलती हुई लड़ाका बुआ, बीच में अवधू अपनी पत्नी के साथ, और पीछे-पीछे लठैता पँड़ाइन। सजग गाँव से बाहर चले जा रहे थे।

चंदोताल से एक ओर क्रौंच का जोड़ा बोल उठा, और दूसरी ओर से टिटिहरी का दल। सब में भय समाया हुआ था कि पीपल से

अभी वह टुकटुइयाँ बोलेगी। पीपल सामने आ गया था। औरतें पीपल के पेड़ का रास्ता काट कर खेत के बीच से जाने लगीं।

अवधू की दूल्हन ने कहा। "नहीं, पीपल के नीचे से ही चलो। देख लेना, आज वह टुकटुइयाँ नहीं बोलेगी। और मुझे पीपल देवता वासुदेव भगवान से अपने सुहाग का आशीष लेना है।

सब के सब पीपल के नीचे आ खड़े हुए। चारों ओर शांति थी। आज कहीं भी टुकटुइयाँ नहीं बोल रही थी। अवधू ने अपनी स्त्री के संग पीपल की जड़ पर माथा झुकाया। पाँच बार परिक्रमा की पीपल की। इतने में खूना दीदी का पति विजयी सिंह भी वहाँ आ उपस्थित हुआ। पीपल की घनी छाया से जब सब लोग आगे बढ़े, सहसा ऊपर पीपल की डाल पर से खूना दीदी की आवाज आयी—रुको, मैं भी सँग चलती हूँ।

खूना दीदी पीपल की डाल से नीचे उतर कर बोलीं—"पीपल पर मैं पहरा दे रही थी कि कहीं वह टुकटुइयाँ बोल न दे।"

आगे-आगे अवधू और उसकी पत्नी, पीछे-पीछे विजयी सिंह और खूना दीनी।

दोनों परदेशी अपनी-अपनी दूल्हनों के सँग पूरबी सिवान से सड़क की ओर बढ़ते जा रहे थे। लड़ाका बुआ और लठैता पँड़ाइन उन्हें विदा दे कर पीपल के नीचे खड़ी पहरा देने लगीं कि टुकटुइयाँ कहीं बोल न दे। सुबह हो गयी। और सच वह टुकटुइयाँ एक बार भी न बोली।

रसबेनिया सुहागभरी

चमरडीहा के नाच का उसबाँगी एक खेला दिखाया करता था :

चलो हे मेहरारू लेब खँचियन सुहाग,
चलो हे मेहरारू खँचियन सुहाग····

तबलची कमर से तबला उतार कर हाथ में कोड़ा सँभालता और कोड़े को नचाता हुआ उसबांगी की पीठ पर ज़ोर से मार कर पूछता, "अबे हे ससुर का नाती! सुहाग, वह भी खाँची भर रे!"

उसबांगी आँख नचा, हाथ लहरा कर कहता, "सुन रे काका!"

"हाँ रे भइया!"

"सुन रे काका! खबरदार होकर सुन!"

"अबे तू खबरदार हो जा! सुहाग की खिल्ली उड़ाएगा तो····"

तबलची उसबांगी की पीठ पर फिर वही कोड़ा जमाता। उसबांगी कहता, "सुन रे काका! तेरे कान में पाका! खबरदार जो इधर-उधर ताका!"

फिर वही कोड़ा।

"सुन रे काका!"

"हाँ, कह रे भइया!"

"हाँ मोर काका ! सुन !····ठाकुर-सुकुल के बखरी मा, भइया-बाबू के घर में हींग-बराबर सुहाग सिनूरदानी मा रहत है न। मुला अपन यहाँ तो, काका, वह सुहाग खँचियन-भर है, खँचियन-भर !"

"अबे ऊ कैसे रे ?"

उसबांगी तबलची का कोड़ा अपनी ठीठ पर रोकता हुआ कहता, "हाँ-हाँ, सुन ! मोर काका, सुन !"

उसबांगी कोड़े की मार सह-सहकर कथा का स्वाँग रचता····कि एक जंगल में एक लकड़हारा पेड़ काट रहा था। एक साँप आया और उसने चुपके से लकड़हारे के पाँव में डँस लिया। लकड़हारा गया मर ! उसकी औरत आई। पति को उस तरह मरा देखकर वह विलाप करके रोने लगी। पात-पात-भर आँसू रोती रही····रोती रही····

यही सुकुल की बखरी में हुआ। रामधारी सुकुल की इकलौती बेटी सोनतारा के माथे पर काल-वज्र गिर पड़ा। ससुराल में पति के संग केवल एक साल तक रह सकी। पति पाँच हाथ का जवान मर्द, दस दरजा अंग्रेज़ी और सिद्धान्त कौमुदी तक संस्कृति पढ़े हुए, तीन दिनों के बुखार में चटपट स्वर्ग सिधार गया।

ब्राह्मण विधवा सोनतारा। ऊपर से जन्म पक्के सरयूपारीण सुकुल के घर और विवाह नैधावा के तिवारी वंश में जहाँ विधवा होते ही बाईस वर्ष की सोनतारा की सारी काँच की चूड़ियाँ तोड़ दी गयीं। सोना-जैसे दमकते शरीर और फागुन की सुबह में चढ़ती हुई धूप की तरह उमड़ती जवानी पर से सारे शृङ्गार उतार लिये गए। सिर-माथे को पानी से पोंछ उसके केश को मुड़ा दिया गया।

फिर केवल एक वक़्त दिन में नमक-मसाला-विहीन भोजन, भूमि-शयन, सफ़ेद वसन और हरि का नाम।

रामधारी सुकुल अपनी इकलौता बेटी के उस कष्ट को नहीं सह

सके। विधवा होने के छः महीने बाद ही सोनतारा बेटी को अपने घर विदा करा ले आए।

तब से आज दो वर्ष बीत गए, विधवा सोनतारा बेटी अपने बाप की ऊँची बखरी में है।

रामधारी सुकुल के पाँच हल की खेती थी। छः हलवाहों में सबसे मुख्य हलवाहा पदारथ चमार था, सुकुल के घर में आने-जाने वाला, बखरी में काका कहलाने वाला।

पदारथ चमार की इकलौती लड़की बेनिया सोनतारा की हमजोली थी। सुकुल बाबा की बखरी में सोनतारा बहिनी के साथ एक संग खेली हुई थी बेनिया।

सोनतारा के विवाह के दो साल पहले बेनिया का गौना हुआ था।

बेनिया के उसी गौने के नाच में वह उसबांगी आया था। वह नाच सुकुल के द्वारे, गोसयाँ से इनाम-इकराम पाने के लिए हुआ था। पदारथ काका पीली धोती पहने था कंधे पर हल्दी से रँगा अंगोछा।

गोसयाँ रामधारी सुकुल के दरवाज़े पर वह नाच हुआ था। सोनतारा बेटी ने तब किवाड़ के पास खड़े होकर देखा था।

उसबांगी हाथ लहराता हुआ कह रहा था, "तो हाँ, रे काका !"

"कह मोर भइया !"

उसबांगी तबलची का मज़ाक़ कर बैठता। तबलची का कोड़ा उसकी पीठ पर बरसता।

"हाँ तो सुन रे काका !"

"कह मोर भइया !"

उसबांगी गोसयाँ लोगों पर छींटे कसता। तबलची का कोड़ा उसकी पीठ पर उछल जाता।

तो उसबांगी कोड़े की मार सहकर कथा का इस तरह स्वाँग रचता

कि लकड़हारिन उस जंगल में पति की लाश पर सिर पीट-पीटकर रोती रही। हाँ रे काका, वह रोती रही, रोती रही····

"तो आगे बोल न ससुरा !"

"कोड़ा धीरे-धीरे मार, काका। का कहूँ काका, बड़ी भूख लागत बाय !"

"कहउ, कहउ, सारे ! सुकुल बाबा खियइहें न, रे !"

"तो सुन काका !"

उसबांगी कहता कि विलाप करती हुई लड़कहारिन की आवाज़ से जंगल के जीव-जन्तु हैरान हो गए। संयोग की बात, उसी जंगल में शंकर-पारवती जी टहलते-टहलते आये। शंकर भगवान् तो अपने नशे में बुत। लकड़हारिन का विलाप पारबती जी के कान में पड़ा। पारबती जी करुना से भर गईं। परेशान कि कौन तिरिया इस तरह जंगल में विलाप कर रही है ? पारबती जी से न रहा गया। बोलीं कि नाथ, चलो, इस विलाप करती हुई तिरिया का दुख मेटें। बेचारी पर कोई बड़ा कष्ट आन पड़ा है।

शंकर भगवान् ने साफ़ कहा कि, यह तिरिया-परपंच अब मेरे मान का नहीं। तुम्हें बहुत दया है तो तुम खुद उसके पास जाओ, मैं क्यों जाऊँ ? औरत का मामला, मुझ पुरुष से क्या मतलब, जी ! बात ठीक ही थी। शंकर भगवान् की मौज थी। क्या करेगा कोई !

तो पारबती जी अकेली ही उस विलाप करती हुई स्त्री के पास गयीं। लकड़हारिन ने पारबती जी का पैर छानकर अपनी करुण कथा कही।

पारबती जी करुणा से भर गईं। उन्होंने अपनी चुटकी में सिन्दूर लेकर लकड़हारिन की सूनी माँग भर दी। लकड़हारा जीवित हो उठा। लकड़हारिन खुशी से चिल्लाती हुई गाँव की ओर भागी। गाँव

भर- की गरीब औरतें खाँची ले-लेकर जंगल की ओर दौड़ीं और अपनी अपनी खाँची में सुहाग भर लिया। तब बड़े-बड़े घर की औरतें पालकी पर, रथ पर बैठ-बैठकर वहाँ आयीं। सुहाग का ढेर तब तक खत्म हो चुका था। उन बड़े-बड़े घर की औरतों को बहुत थोड़ा-थोड़ा सुहाग मिला। किसी को सींक-भर, किसी को मासा-भर, किसी को उसका छींटा-भर।

चमरडीहा के नाच के तबलची ने बड़े ज़ोर से अपना तबला बजाया :

धींग धींग धीना धीना, धींग धींग धीना धीना

और उसबांगी नाचता हुआ बोला, "चलो हे मेहरारू ! लेव खँचियन सुहाग। जौ सुहाग न कभी घटे, न कभी चुके चलो हे मेहरारू····

पदारथ काका की इकलौती लड़की बेनिया अपने पति घुरहू के साथ नैहर में ही रहती थी ! बेनिया को छोड़ पदारथ के और कोई लड़का न था। बेनिया के भी अभी तक कोई बाल-बच्चा नहीं हुआ था।

पिछले साल गाँव में शीतला माई का कोप हुआ और उन्होंने घुरहू की बाँह पकड़ ली। बेनिया उसी लकड़हारिन की तरह रोती रह गई।

किन्तु पदारथ ने बेनिया के हाथ की न चूड़ी फूटने दी, न उसके जवान शरीर के वस्त्र-आभूषण उतरने दिए।

एक दिन बेनिया सुकुल बाबा की बखरी में आयी। सोनतारा बहिनी से हँस-हँसकर बोली, "बहिनी, सुनो न, बैसाख के दूसरे पाख में मेरी फिर से शादी हो रही है !"

सोनतारा नीम की लकड़ी को चौकी पर कुश की चटाई बिछाकर

उदास बैठी थी, बेनिया से दस हाथ की दूरी पर। बेनिया की हँसी और उसकी उस बात से सोनतारा के हृदय में अजब-सी ईर्ष्या उठी। बेनिया के प्रसन्न मुख पर जैसे कभी वैधव्य की कोई छाया ही न उतरी हो। हँस-मुख, प्रसन्न बदन और अपने सुहाग का इतना गर्व! हाथों में लाल चूड़ियाँ। शरीर पर गुलाबी झुलवा! बेनिया का वह मुख देखकर सोनतारा की आँखों में बेनिया के गौने के नाच का वही उसबांगी कौंध गया :

चलो हे मेहरारू, लेव खँचियन सुहाग....

सोनतारा सोचने लगी, बेनिया को खाँची-भर सुहाग मिला है, जो कभी नहीं खत्म होगा, और मुझे केवल सींक-भर सुहाग मिला था, जो एक ही बार में सदा के लिए इस जन्म में खत्म हो गया।

बेनिया बड़े गर्व से सोनतारा बहिनी से अपने पति के विषय में बतने लगी कि, वह सरजू के माझे में लढ़िवानी करते हैं। सरजूपारी डाँडे से गंजी, आलू, तरबूज, खरबूज, और छपाई का कपड़ा लादते हैं। बहुत सुन्दर पहलवान हैं। दंगल लड़ते हैं। अकेले अपनी बैल-गाड़ी पर तरह-तरह के सामान लाद कर सरजू के माझे से नगर-बाज़ार और बस्ती ले जाकर गिराते हैं!....वही मेरे दूल्हा होंगे!

"तो मैं क्या करूँ?" सोनतारा ने घृणा से सहसा मुँह फेर लिया।

"मैं तो आप से बात कर रही हूँ, बहिनों,! दस ही दिन तो मेरी सादी के और रह गये हैं। फिर आप से थोड़े ही भेंट होगी।"

सोनतारा बेनिया की ओर पीठ किये सूने आँगन से ऊपर दहकते हुए आकाश की ओर एकटक देख रही थी। वैसाख का धू-धू करता हुआ आसमान! आग के बवण्डर उठ रहे थे, सूखी पत्तियाँ, जलते हुये धूल-कण ऊपर एक गोलाई में उठ-उठ कर आँगन की ज़मीन पर बरस रहे थे, कहीं कोई पत्ती नहीं! कहीं किसी की पुकार नहीं। केवल

बैसाख की दुपहरिया की दाहक हवा, तप्त बवंडर और श्मशान-जैसा सन्नाटा!

बाग के सघन कुंज में बैठी हुई श्यामा चिड़िया की तरह चहकती हुई बेनिया दाँत से सींकें तोड़ती हुई कहती जा रही थी कि, बहिनी, झूठ क्यों बोलूँ? वह काका से कह रहे थे कि मैं घर-बैठा नहीं बैठूँगा। मैं बेनिया को अपनी गाड़ी में बिठा कर सरजू के माझे में लाऊँगा! अभी पिछले दिनों नवरात के मेले में उनसे मेरी भेंट हुई थी और वह मुझ पर लुभा गए थे। मैंने कहा, रहना तो तुम्हें मेरे ही घर होगा। फिर तो वह राजी हो गए। हैं वह बड़े रँगीले और मनमौजी। बोले, रहूँगा तो तुम्हारे ही गाँव-घर में, पर एक शर्त रहेगी। मैं सरजू की ठंडी हवा में सोने वाला आदमी ठहरा। तुम्हारी चमरटोली के घर में अगर किसी रात मुझे गरमी के मारे नींद न आई तो मैं तुम्हारा घर छोड़ कर अपने घर सरजू के माझे में चल दूँगा। बहिनी, क्या बताऊँ, हँसी-हँसी में मैंने उनसे यह शर्त बद ली। डर लगता है, बहिनी, कि सचमुच उन्हें अगर मेरे घर के भीतर किसी रात नींद न आयी तो वह भाग खड़े होंगे। बड़े सैलानी हैं वह! किसी को नहीं सेंटते। बस आजादी से गाड़ीवानी करते हैं। काका बताते थे कि अब तक वह अपनी मौज में दो ब्याही औरतें छोड़ चुके हैं। पहली काली थी, दूसरी दँततोड़ी थी। पर मुझ पर तो लुभा गए हैं, बहिनी! विवाह के लिए छटपटा रहे हैं।....पर मैंने हँसी-हँसी में उनकी शर्त क्यों मान ली? मेरा काका भी मुझे इसी बात पर बहुत डाँट रहा था। पर तुम्हीं बताओ, बहिनी, मैं मानती न तो और क्या करती? यह कौन सी बड़ी शर्त है, बहिनी, तुम्हीं बताओ न! वह अपना घर छोड़ कर मेरे मोह में यहाँ मेरे घर आएँ और मैं उनकी यह छोटी-सी शर्त न मानूँ?

सहसा सोनतारा ने आग्नेय दृष्टि से चहकती हुई बेनिया की ओर

देखा।

बेनिया बहिनी का वह मुख देख कर सहम गई।

"क्या है, बहिनी, मुझ से कोई गलती हुई क्या ?"

सोनतारा ने गंभीरता से पूछा, "सुन, बेनिया, तो तेरा वह कलमुँहा मर्द अपनी जबान का पक्का है न ?"

"कलमुँहा उन्हें काहे कहती हो, बहिनी ? उन्होंने आपका क्या कसूर किया है ? ऐसी भाखा मत बोलो, बहिनी ! काहे ऐसी...."

"मेरी बात का जवाब दे ! ज्यादा मेरे सामने बक-बक मत कर ! वह अपनी ज़बान का पक्का है न ?"

"हाँ बहिनी। आप से क्या छिपाऊँ ! काका कह रहा था कि वह बड़े ज़िद्दी और अपनी बात के पक्के हैं ! कहाँ से मैंने उनकी यह शर्त मान ली। पर बहिनी उनकी वह शर्त कुल सात ही रात तक की है— विवाह के बाद तलरी पूजा की रात से लेकर रसियाव की रात तक !"

"अच्छा सुन, अगर उसे तलरी पूजा की रात नींद न आयी तो....।"

"राम-राम, ऐसा टूट सराप काहे बोलो, बहिनी ?"

बेनिया यह कहते-कहते रो पड़ी। सोनतारा का मन हलका होने लगा। उसके हृदय की आग थमने लगी। आँगन के आसमान का आग-बवंडर मंद पड़ने लगा। बेनिया आँचल से अपने आँसू पोंछती हुई सिसकते स्वर में बोली, "ऐसा टूट सराप काहे बोलो, बहिनी ? हमने आपका क्या बिगाड़ा है ?"

सोनतारा मूर्तिवत् गम्भीर नीम की चौकी पर निश्चल बैठी रही। उसके दोनों हाथों में कुश की चटाई से तोड़ी हुई दो कुश की सींकें थीं, जिन्हें वह देख रही थी।

बेनिया सोनतारा बहिनी के आगे अपना आँचल बिछा कर जैसे

भीख माँगने लगी, "बहिनी, आशीरवाद दो हमें, उनकी वह शर्त पूरी हो ! नहीं तो वह मेरा घर छोड़ माझे में ज़रूर चले जाएँगे। बड़े सैलानी हैं वह। और मेरा काका मुझे माझे में नहीं बिदा करेगा !"

"तो तीसरी शादी कर लेना !" सोनतारा के होंठों पर एक रूखी हँसी आकर टूट गई। "तुझे तो खँचियन सुहाग मिला। इसी का तो घमण्ड है तुझे !"

और बेनिया को उसी तरह रोती हुई छोड़ कर सोनतारा अपने घर के भीतर वाले खण्ड में चली गई।

बेनिया की शादी में रामधारी सुकुल के दरवाज़े पर फिर वही चमरडीहा के मशहूर रासधारी का नाच आया।

उसवांगी ने फिर वही खेला दिखाया।

चलो हे मेहरारू लेव खँचियन सुहाग
चलो हे मेहरारू लेव खँचियन सुहाग....

बेनिया का पति गोबरधन भी पोलो धोती और महीन कुर्ता पहने सुकुल के दरवाज़े पर आया। मँह में पान। आँखों में काजल। गले में सोने की गुल्ली। दायीं कलाई में पहलवानी चुल्ला। रेख-उठानी मोंछ। पैर में टँड़हवा पम्प जूता।

गाँव में सारी औरतें-लड़कियाँ सुकुल के बरामदे में से गोबरधन को देखती रहीं।

एक बार किवाड़ की दराज़ से सोनतारा ने भी दहकते हृदय से बेनिया के पति को देखा, पर दूसरे ही क्षण घृणा से मुँह फेरकर वह भीतर आकर अपनी उसी कुश की चौकी पर बैठ गई।

नाच-गाकर दूसरे दिन वह रामधारी नाच गाँव से चला गया। दोपहर तक खा-पीकर पदारथ काका के पाहुन भी विदा हो गए।

उसी संध्या के बाद आया तलरी पूजा का समय।

५

चमरटोलिया की सारी औरतें बेनिया और गोबरधन को एक गाँठ में जोड़े हुए ठाकुर बाबा के ताल पर ले गईं।

पदारथ काका सुकुल के दरवाजे पर चले गए थे।

उसी समय बेनिया के घर में आग लग गई।

गुहार मची। ताल पर से औरतें दौड़ीं। सारा गाँव टूटा।

पदारथ का छप्पर-छान का घर। कच्ची दीवारें। कुशल कि चमटोलिया के बीच में वह घर न था। एकदम से पश्चिम के किनारे और ईश्वर की कृपा से पुरवैया हवा।

आग लंका कोन से लगी थी। दक्खिन से पश्चिम की अँवारी क्षण-भर में स्वाहा। पूरब की कोनिया और उत्तर की अँवारी की छान गोबरधन ने देखते-ही-देखते घर से बाहर खींच गिराई। दूसरी तरफ़ आधा घर जलाती हुई आग, पानी के असंख्य घड़ों से बुझकर बह गई।

बेनिया की माँ फिर से दोबारा भोजन बनाने बैठी।

पदारथ काका टोले की मदद से घर की बड़ेर कोरो आदि ठीक करने लगे। बेनिया फाँड़ बाँधे, अँचरा कसे घर की सफ़ाई करने लगी और गोबरधन खींची हुई छप्पर-छान को ठीक करने लगा।

घर में जली हुई वह सारी जमीन और दक्खिन से पच्छिम की सारी जली दीवारें चूल्हे की तरह आग उगल रही थीं।

बेनिया सूप में पानी भर-भर के जितना ही उन दीवारों को शीतल करने का प्रयत्न कर रही थी, वे जलती हुई दीवारें उतनी ही आग फेंकती थीं।

सबसे आँख बचाकर गोबरधन ने बेनिया से कहा, "तलरी पूजा की रात आज नहीं कल रात सही।"

बेनिया नाक में झुलनी पहने हुए थी, गोबरधन की गढ़ाई हुई।

काजल-भरी-भरी, बड़ी-बड़ी आँखों से उसने गोबरधन को देखा और लजाकर बोली, "नहीं, तलरी पूजा की रात आज ही होगी, चाहे जो हो!"

गोबरधन अपनी बेनिया को देखता ही रह गया।

आधी रात का समय।

उत्तर अँवारी में कोने का कमरा, बिना छान-छप्पर का। ऊपर खुला हुआ आसमान नक्षत्रों से भरा हुआ।

और वह तलरी पूजा की रात। गोबरधन और बेनिया उसी उजड़े घर में सोये।

बेनिया ने अनुभव किया कि दक्खिन और पच्छिम की ओर से ताजे जले हुए घर की लपट-जैसी गरम हवा आ रही है, इन्हें नींद नहीं आएगी।

बेनिया ने अपनी दो पीली धोतियाँ पानी में डुबो लीं। एक को पश्चिम ओर ताना, दूसरी को दक्खिन ओर।

बाँस के पंखे को पानी से तर कर लिया और गोबरधन को पंखा झलती हुई उसे अंक में ले लिया।

दो घंटे के बाद गूलर के पेड़ पर कचपचिया बोली। बेनिया की आँख खुल गई। उसे डर लगा कि कोई उसकी सूनी दीवार और पाख पर चढ़कर उसे झाँक रहा है। पर शिशु की तरह सोए हुए गोबरधन को देखकर वह गद्‌गद हो गई।

भीगे हुए पंखे को वह यंत्रवत् गोबरधन पर झलती। फिर गोबरधन के अंक में वह अपना मुँह छिपाकर गा उठी साँसों में ही।

चार महीना गरमी के दिनवाँ।

टुप टुप चूवै पसिनवाँ बलम रसबेनिया डोलाय जा
हमरी झुलनिया की छैया घलम दुपहरिया छहांए जा····

अगले दो ही दिनों के भीतर गोबरधन और पदारथ काका ने अपना सारा घर छाय-छोप लिया।

सुकुल की बखरी में से सोनतारा बहिनी ने बेनिया को अपने पास बुलाया।

बेनिया डरती-डरती सोनतारा के पास गयी और चुप खड़ी रही।

सोनतारा की आँखें आँसुओं से भरी हुई थीं।

आँचल से सोने की तिलरी निकालकर सोनतारा बहिनी ने बेनिया के गले में डाल दी। और उसे अंक में खींचकर रो उठी, "बेनिया, तलरी पूजा की रात तेरा घर मैंने ही फुँकवाया था····"

लोहराबीर की नौटंकी

फैजाबाद से पूरब की ओर चलिये और किसी से लोहराबीर गाँव का नाम पूछिए, तो वह मारे खुशी के गा उठेगा—उसी लोहराबीर की नौटंकी धुन में।

जिसके मारे भूमि पर छाया है सुखधाम
अचरज है—उसका अभी सुना न तुमने नाम!

कारन, लोहराबीर की नौटंकी पूरे अवध-भर में मशहूर और मारूफ़। किन्-किन्-किन्-किन् कुड़ धम्म! कुड़ धम्म! उस पर नूरेमियाँ का वह जादुई ढोल और बसन्त मास्टर की वह सब्जपरी हरमुनियाँ। उस भरे संगीत पर मुन्ना और रसना, वे दो छोकरे—जब वे दोनों एक सुर में गाते हैं, तो लगता है मानों दो कोयल एक साथ कूक रही हैं। और वे दोनों जब घुँघरू पहनकर नाचते है तो जैसे घने बादलों में बिजली थिरक रही हो।

और इस नौटंकी की आत्मा हैं, वही हाई स्कूल पास पं० भोला-शंकरजी मास्टर—जो उसके लिए नौटंकी लिखते हैं और मण्डली को प्रेरणा देते हैं। 'रामलीला,' 'कृष्णलीला,' 'भारतमाता,' 'नारद-मोह'····अनन्त खेल।

यह पंडित भोलाशंकरजी भी खूब हैं। जो-जो चाहते हैं, अपनी इसी नौटंकी से वह पूरा कराके छोड़ते हैं। इसी से पहले लोहराबीर में एक किसान हाई स्कूल कायम किया—दसवीं कक्षा तक—छप्पर और खपरैल की बिल्डिंग। हेडमास्टर के रूप में वे उस हाई स्कूल से सिर्फ़ एक रुपया महीना अपनी तनख़ाह लेते थे।

जब देश गुलाम था तो लोहराबीर का यह स्कूल मिडिल स्कूल था। पर मशहूर थी लोहराबीर की वह नौटंकी ही। आज़ादी की लड़ाई का फ़रमान आया तो लोहराबीर की यही नौटंकी झंडा उठाकर सामने आई। वही 'अमर शहीद,' वही 'भारतमाता' का दारुन खेल! इसी के अपराध में पंडित भोलाशंकरजी दो बार जेल गये। और जब देश आजाद हुआ तो पहन्द्र अगस्त और छब्बीस जनवरी को वही नौटंकी—'समाज की क्रांति,' 'हम आजाद हैं,' 'बापू का वसीयतनामा।'

और तब नम्बर आया लोहराबीर में एक इंटर कालेज के सब विषयों के साथ कृषि कालेज स्थापित करने का स्वप्न! 'लोहराबीर कृषि कालेज!'

असम्भव!

ऐसा, जो इंटर कृषि कालेज अभी फैजाबाद शहर में नहीं खुला, वह कालेज यहाँ लोहराबीर के इस मैदान में, यह भोलाशंकरजी खोलना चाहते हैं! इनका दिमाग खराब हो गया है! और इनका यही पागलपन रहा तो लोहराबीर का वह बेचारा हाई स्कूल भी बन्द हो जाएगा। राम-राम....।

पर भोला बाबू भी गज़ब के आदमी! दिमाग़ में कोई स्वप्न आया तो उसे पूरा करने के लिए अपने प्राणों की बाज़ी लगा देंगे! रातों-रात उन्होंने लोहराबीर कृषि कॉलेज की कमेटी बना डाली। अध्यक्ष बनाया बाबू रामनगीना सिंह एम० एल० ए० को—उस देश-

जवार के बड़े नामी पुरुष, त्यागी देश-भक्त। उपाध्यक्ष बनाया बेनूपुर भारत चीनी मिल के मालिक सरदार किरपासिंह को। मंत्री बनाया, फ़ैज़ाबाद शहर के दामोदर बाबू को। कोषाध्यक्ष चुना—अपने ही गाँव के साठ-वर्षीय कट्टर ईमानदार पुरुष, बाबू बेधड़कसिंह को। और वह खुद बने कमेटी के सहायक मंत्री। इसके बाद कमेटी में पाँच सदस्य और; तिलगवाँ के मोहन चौधरी, सोनपुर के अलगू महतो, देवीपुर के रामभरोसे अहीर, मदारपुर के इब्राहीम खाँ और बनगवाँ के रामराज पाँडे। ये सारे सदस्य उस क्षेत्र के बड़े-बड़े किसान थे, जिनके यहाँ पचास-पचास, चालीस-चालीस बीघे केवल ऊख की ही खेती होती थी।

रात-दिन एक करके भोला मास्टर ने कृषि कॉलेज का संविधान तैयार किया। कमेटी की मीटिंग की। सब के दस्तखत लिये। फ़ैज़ाबाद के खज़ाने में रजिस्ट्री की फ़ीस जमा की और लखनऊ जाकर लोहराबीर कृषि कॉलेज की रजिस्ट्री करा ली।

जै बजरंगबली की!

फिर नगारा बजा फ़ैज़ाबाद चौक के भीतर—किन्-किन्-किन्-किन् कुड़ धम्म! कुड़ धम्म!

और वही नौटंकी शुरू हुई—

तेरी माया नटी नचावे, तू नटवर
जैसा मन भावे!
हम सब सेवक तेरे स्वामी!
कर दे बेड़ा पार!
हो जी....।

चारो रातों तक वह नौटंकी फ़ैज़ाबाद चौक में होती रही। कुल आमदनी साढ़े सात सौ रुपये की हुई। वह सारा धन भोला मास्टर ने

फ़ैज़ाबाद बैंक में लोहराबीर कृषि कॉलेज के नाम से स्थायी खाता खोलकर जमा कर दिया।

और अगहन लगते-लगते जैसे ही वह बेनूपुर भारत चीनी मिल अपने 'सीज़न' के लिए चालू हुई—जै बजरंगबली की! फ़ी ऊख गाड़ी से चार आने लोहराबीर कृषि कॉलेज के लिए बाखुशी कटौती शुरू हुई।

सबसे बड़ी वह फ़ैज़ाबाद तहसील! और उस पूरी तहसील की ऊख के लिए सिर्फ़ वही एक बेनूपुर की भारत चीनी मिल!

लढ़िया-पर-लढ़िया!

ऊख-पर-ऊख! वही सात हाथ-वाले हथिया झुल्ल गन्ने! कि एक ऊख चूसते न बने। बस रस-ही-रस!

यही ऊख-भरी गाड़ी के ऊपर गाड़ी!

काट दे कावा! झारे रौ राजा! मार दे बढ़िके!

दिन-रात लढ़िवान कावे में ऊख-भरी बैलगाड़ी के ऊपर बैठे डेढ़ तल्ला फगुआ गाते हैं—और मिल की चिमनी देखते हैं कि कब ऊख तोली जाए और वे कब वहाँ से भागकर फिर गाँव जाएँ और ऊख की दूसरी खेप वहाँ ले आएँ!

भारत चीनी मिल के काँटे पर पंडित भोलाशंकर जी खुद खड़े हिसाब गिनते थे कि चौबीस घण्टे में आठ सौ बैलगाड़ियाँ काँटे पर तौली जाती हैं। तो आठ सौ ऊखगाड़ी माने, आठ सौ चवन्नी—यानी दो सौ रुपये रोज़। मतलब एक माह में लोहराबीर कृषि कॉलेज के लिए छः हज़ार रुपये! जै अयोध्यानाथ की!

अगहन, पूस, माघ, फागुन और सात दिन चैत के, बस भारत चीनी मिल का सीज़न खतम! मिल की चिमनी के सामने वही सफ़ेद झंडी!

भोला मास्टर और कोषाध्यक्ष बाबू बेधड़कसिंह दोनों ने भारत चीनी मिल के खज़ाने पर कृषि कॉलेज का पूरा हिसाब लगा लिया। कुल धन आया—पचीस हज़ार चार सौ रुपये!

जै गणेश भगवान् की!

बोलो पंचो! तो अब कृषि कॉलेज की नींव जमाई जाए न!

हाँ, जमाई जाए!

मुला पंचो! उधर कॉलेज बने, इधर अगले 'सीज़न' में एक बार और वही चार आने फ़ी गाड़ी लोहराबीर कृषि कॉलेज का चन्दा कटे!

मंज़ूर!

मंज़ूर!!····दोनों हाथों!

पंडित भोलाशंकर जी मास्टर इलाहाबाद से इंजीनियर बुला लाए। कृषि कॉलेज की बिल्डिंग का पूरा नक्शा बनवाया। और फ़ैज़ाबाद के कारीगर और मिस्त्री। कमेटी के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष ने प्रश्न रखा कि कॉलेज का शिलान्यास किससे कराया जाए!

अध्यक्ष ने प्रस्ताव किया राष्ट्रपति के लिए! उपाध्यक्ष ने बात उठाई प्रधान मंत्री के लिए। फिर दौड़ाधूपी शुरू हुई कांग्रेस कमेटियों तक, लखनऊ-दिल्ली तक। पर अभी चार महीने इन्तज़ार करना होगा, इस शिलान्यास के लिए! अब बोलो भइया!

पण्डित भोलाशंकर को हँसी आने लगी। लोहराबीर की नौटंकी में जो 'कमेडियन' था न, उसीने एक दिन नौटंकी में मज़ाक किया। खेल तो चल रहा था 'रुक्मिणी मंगल' का। उसी में 'कमेडियन' ने एक ग़ज़ब का व्यंग्य कस दिया, इस कृषि कॉलेज की शिलान्यास समस्या पर! दृश्य था वन का। चिता जलाए रुक्मी खड़ा है। जैसे ही वह चिता में कूदना चाहता है वैसे ही उसे कमेडियन झट से पकड़ लेता है—हे लेव, इतनी जल्दी मर जाओगे तो कैसे काम चली राजू!

अरे अबहीं तो चार-छः साल में लोहराबीर कृषि कॉलेज का शिल-शिल-शिल-शिलानास होगा, फिर उसे कौन देखेगा हो मुरहऊ !

भोला मास्टर की तो जैसे आँख खुल गई ! नहीं-नहीं, जैसे किसी ने उसके मुँह पर एक तमाचा मारा हो।

अगले दिन बृहस्पतिवार था। लोहराबीर में एक खुशियाली महतो थे। अस्सी साल की उनकी उमर। दो ही बीघे के किसान थे। जनम भर वह और उनके लड़के-पोते गल्ले पर खेती करके जीवन बिता रहे थे। पर थे खुशियाली महतो गाँव-भर में सबसे खुश, सबसे सन्तुष्ट ! जीवन बीत गया, पर कभी न झूठ बोले, न कभी कचहरी-थाना गये, न किसी की चोरी-चुगलई की। उन्हीं के हाथ से भोला मास्टर ने लोहराबीर कृषि कॉलेज का शिलान्यास करा दिया।

फिर क्या था अध्यक्ष और उपाध्यक्ष दोनों भोला मास्टर से सख्त नाराज़ ! दोनों का त्यागपत्र और साथ ही गुस्सा तथा प्रतिशोध-भरे काग़ज़ात। बेचारे भोला मास्टर को तो लेने-के-देने पड़ गए। दोनों के बँगलों पर जा-जाकर उन्हें माफ़ियाँ माँगनी पड़ीं। बड़ा अपमानित होना पड़ा उन्हें।

पर कोई बात नहीं।

सब उसी रघुनाथजी की माया है।

कृषि कालेज की बिल्डिंग बननी शुरू हो गई। दस कमरे बाईं ओर और दस कमरे दाईं ओर, बीच में बड़ा हॉल कमरा। उससे लगी हुई लाइब्रेरी और ऑफ़िस; दाईं ओर बॉटिनी, केमिस्ट्री आदि की प्रयोगशाला के कमरे।

पर प्रिंसिपल का कमरा किधर है ?

'कमेटी रूम' कहाँ है ?

अध्यक्ष और उपाध्यक्ष ने एतराज़ खड़ा किया।

मास्टर भोलाशंकर ने कहा—"प्रिंसिपल उसी ऑफिस में ही सबके बीच बैठेगा। उसके लिए अलग से कमरे की कोई ज़रूरत नहीं। रही 'कमेटी रूम' की बात। वह किसी भी कमरे में हो सकती है। कमेटी की बैठक साल में दो बार ही तो होती है।"

पर इससे अध्यक्ष और उपाध्यक्ष ज़रा भी सन्तुष्ट नहीं हुए।

अगले 'सीज़न' में फिर वही चार आने फ़ी गाड़ी के हिसाब से कृषि कालेज के लिए चन्दा करना शुरू हुआ। इस बार भारत चीनी मिल फागुन तक ही चली। और 'सीज़न'-भर में कुल इकट्ठा हुआ चौबीस हज़ार।

मज़दूर-कुली के रूप में गाँव-जवार के लोग बारी-बारी वहाँ निःशुल्क काम करने आया करते थे। इस तरह दो वर्ष का काम एक ही वर्ष में पूरा हो गया।

अब प्रश्न आया कृषि कालेज के लिए सामान खरीदने का। इसका ज़िम्मा लिया अध्यक्ष बाबू रामनगीनासिंह ने और इसका हिसाब-किताब दिया मन्त्री महोदय, दामोदर बाबू के हाथ।

फिर नम्बर आया अध्यापकों की नियुक्ति का।

कमेटी ने प्रिंसिपल बनाया उन्हीं पण्डित भोलाशंकरजी को ही। पर अध्यापकों की नियुक्ति में अध्यक्ष महोदय ने शिक्षा के जिला इन्स्पेक्टर, उपाध्यक्ष, मन्त्री और प्रिंसिपल साहब (सहायक मन्त्री) की एक स्वतन्त्र कमेटी बनाई।

सब विषयों के साथ 'इण्टरमीडियेट' कृषि कालेज लोहराबीर की मान्यता चूँकि उसी बाबू रामनगीनासिंहजी ही ने दिलाई थी, और लखनऊ तक उनका आना-जाना सदा बना रहता था, इसलिए उनकी आवाज़ इन मामलों में सबसे ऊपर स्वीकार की गई।

अध्यक्ष महोदय चूँकि जाति के क्षत्री थे, इसलिए तेरह नये अध्या-

पकों में सात अध्यापक क्षत्री ही लिये गए। मन्त्री महोदय, चूँकि अग्रवाल थे, इसलिए चार अध्यापक वैश्य ही नहीं, ख़ालिस अग्रवाल नियुक्त हुए। अब बचे केवल दो अध्यापक। ज़िला इन्स्पेक्टर सक्सेना कायस्थ थे, इसलिए शेष दो अध्यापक सक्सेना लोग लिए गए। उपाध्यक्ष महोदय का चूँकि अपना कोई उम्मीदवार न था, इसलिए उन्होंने इस कार्य में कुछ भी रुचि न ली।

अब जुलाई का महीना आया।

नये कालेज का कार्य शुरू होने को हुआ।

पर इस कालेज का उद्घाटन ? ओहो ! यह तो पण्डित भोलाशंकरजी भूल ही गए थे। इस बार इस कार्य को बड़ी सावधानी और निगरानी से अध्यक्ष महोदय ने अपने हाथ में लिया। वह फिर दौड़े लखनऊ और दिल्ली।

राष्ट्रपति !

प्रधान मन्त्री !

अभी चार महीने इन्तज़ार करना होगा। अच्छा है, इस महत् कार्य के लिए उतनी प्रतीक्षा में क्या है ? चार महीने होते ही क्या हैं ? इतना समय तो उसकी तैयारी में लग जाएगा।

पण्डित भोला मास्टर बेहद उदास ! चिन्तित !

बाप रे बाप ! यह उद्घाटन क्या बला है ! उनके मन में तो यह स्वप्न था कि कुर्बजवार के सभी किसान उस दिन यहाँ अपने गाने-बजाने के साथ इकट्ठे होते, जिस दिन पहले-पहल यह स्कूल खुलता। दिन भर गाँव का मेला। सन्ध्या-समय लोहराबीर की वही नौटंकी।

किन्-किन्-किन्-किन् कुड़ धम्म ? कुड़ धम्म !

इस अवसर के लिए भोला मास्टरजी ने एक विशेष नौटंकी तैयार की है। नाम है 'नया उजाला' उर्फ़ 'आँखों का भगवान्।'

पर स्वप्न तो स्वप्न ही रहता जा रहा है। हे अयोध्यानाथ !

प्रधान मन्त्री से नीचे इतने बड़े महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक कार्य का उद्घाटन तो हो ही नहीं सकता !

बाबू रामनगीनासिंहजी ने उसी तरह चूड़ीदार पायजामा और शेरवानी बनवा ली है, ठीक उसी तरह टोपी। वही सबसे पहले उद्घाटनकर्त्ता प्रधान मन्त्री से हाथ मिलायेंगे। उपाध्यक्ष महोदय—भारत चीनी मिल के मालिक की सफ़ाई-पुताई करा डाली है। प्रधान मन्त्री की कार इधर से ही जायेगी। यह पाँच मिनट के भीतर ही अपनी भारत मिल को उन्हें दिखाना चाहेंगे और उनके सामने अपनी एक नई योजना रखेंगे। इधर मन्त्री महोदय दामोदर बाबू अपनी तैयारी में लगे थे। वह फ़ैज़ाबाद में अपनी कोठी के सामने उस लम्बे मैदान में खेल-कूद के सामान बनाने की एक इण्डस्ट्री खोलना चाहते हैं। अध्यक्ष बाबू रामनगीनासिंह ने इसकी पक्की योजना बना ली है कि उसका शिलान्यास भी लगे हाथों उसी समय हो जायगा। जै हिन्द !

लोहराबीर नौटंकी के 'कमेडियन' ने एक खेल में फिर वही मज़ाक किया—हे लेव ! पहाड़ से गिरा तो खजूर के पेड़ में आयके अँटक गया !

अरे काव हो ?

हे लेव ! तुहैं पतै नाहीं, अरे वही उच्चाटन ?

उच्चाटन ?

हे लेव ! उच्चाटन नहीं, उद्घाटन। उद्-उद्-उद····घाटन····घाटन ····घाटन। जैसे कथरी में सिल्क साटन ! हे लेव····!

अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और मन्त्री महोदय के फ़ैसले के अनुसार पूरे कालेज के सिर्फ़ चार कमरों में ही पढ़ाई शुरू हुई—शेष सारी बिल्डिंग तब खुलेगी जब चार-पाँच महीने बाद इसका समुचित उद्घाटन

होगा।

बोलो महतिमा गान्ही की जै !

हे लेव ! अरे चार महीना में क्या रखो है जी, इहाँ तो पूरी ज़िनगानी इन्तज़ार में ही काट देते हैं।

वही 'कमेडियन' उदास-चिन्तित भोलामास्टर को तब हँसाने की इच्छा से यह बोला था।

तभी एक दिन सबने सुना कि चीन ने भारत की उत्तरी सीमा पर पूरे युद्ध के साथ आक्रमण कर दिया।

अब सम्हालो !

भोला मास्टरजी की नींद ग़ायब। पर दो ही चार दिनों में जब उन्होंने देखा कि सोया हुआ देश सहसा जाग गया है, तब उन्हें शान्ति हुई। वह अपना झोरा-झंडा लिये हुए दिन-रात अपने कुर्बजवार में राष्ट्रीय सुरक्षा कोष के लिए धन इकट्ठा करने में लग गए। लोहराबीर की नौटंकी का नगारा बड़ी तेज़ी से बज उठा।

किन्-किन्-किन्-किन् कुड़ धम्म ! कुड़ धम्म !

रुपया और सोने के ज़ेवरात ! फैजाबाद के कलक्टर को एक ही सप्ताह में उन्होंने ढाई सेर सोना और तीन हज़ार रुपया राष्ट्रीय सुरक्षा कोष में दे दिया।

उनकी जान-पहचान के गाँवों में कोई भी ऐसा किसान-मजदूर न बचा, जिसने जी खोलकर इसमें सहायता न दी हो। पर इस सहायता-संग्रह में उन्होंने यह अनुभव किया कि गाँव में वह रुपया और वह रत्ती-तोला सोना कितने अमूल्य भाव का है। कितना पवित्र है वह गाढ़ी कमाई का धन ! और उन्होंने यह भी अनुभव किया कि सुरक्षा कोष में जितना धन अपेक्षाकृत गरीब किसान और मध्य-वर्ग के लोग दे रहे हैं, उसकी तुलना में वे धनी मानी लोग कुछ भी

नहीं हैं।

वह बाबू रामनगीनासिंह, वह भारत चीनी मिल के मालिक सरदार किरपासिंह, और फैजाबाद के वह सेठ दामोदर बाबू—इन तीनों ने जैसे गरीब देश को भीख दी हो। सोने का कोई एक भी आभूषण इनमें से किसी ने न दिया।

सरदार साहब और दामोदर बाबू बोले कि सुरक्षा कोष में हम लोग कोई विशेष दान क्या दे सकते हैं।

इस 'दान' शब्द से भोला मास्टर का खून खौल गया। उन्होंने तड़पकर कहा—"दान ! कैसा दान ! यह संघर्षरत देश कोई पराया है क्या, कि उसे आप दान दे ! यह देश कुछ और है, और आप लोग कुछ और हैं, तभी इस दान की सार्थकता है न ? जो अपना है उसे क्या दान देना, वह कोई भीख माँगने आया है क्या ? अरे जो कुछ हमारा है, वही तो देश का है, उसमें कैसा दान ? अरे वह तो सब दिया ही हुआ होना चाहिए।"

कहते-कहते भोला मास्टरजी दोनों के सामने रो पड़े थे। पर उन्हें हँसी आ गई थी। तब पहली बार भोला मास्टर को लगा कि उन्नीस सौ चालीस-बयालीस के उन इन्सानों की तुलना में आज के ये नये इन्सान कितने बदले हुए हैं ! भावना-हीन, उद्देश्यहीन, मूल्यहीन। केवल ठण्डे हिसाबी-किताबी लोग। जैसे स्वदेश में ही विदेशी भाव से जीने वाले ये लोग।

पूरे फैजाबाद जिले-भर में लोहराबीर सबसे आगे था।

सवा महीने तक लोहराबीर की वह नौटंकी एक रात भी न सोई। कहाँ सुल्तानपुर जिला, कहाँ वह टांडा तहसील, कहाँ वह रायबरेली, और कहाँ वह सरयू पार का माझा—इतने बड़े क्षेत्र में वह नौटंकी गूँजती रही।

भोला मास्टर ने गज़ब-गज़ब के गाने, कहरवा, लचारी और क़व्वाली-दादरे इस बीच में लिखे और अपनी नौटंकी में मोती की लड़ी की तरह गूँथ दिए।

जागा वीर भारती देशवा के रतनवाँ
मैदनवाँ रोके चीन से लड़ा!

हे लेव! 'कमेडियन' भी उसी सुर में गाता रहा—

धरती डोले उगिले आगी आस्मनवाँ
चरनवाँ लेकिन पीछे न हटे!
बलि की वेदी देश के खातिर हँसिकै हम चढ़ि जावै
एक चीन नहिं लाखन से टकरावै
चाहे काल आइके करे युद्ध मैदनवाँ
चरनवाँ लेकिन पीछे न हटे!

और एक दिन उत्तरी सीमा का वह युद्ध बन्द हो गया। चीन पीछे लौट गया। पर भोला मास्टर अपने कृषि कालेज के विद्यार्थियों से, गाँव के लोगों से बराबर कहते रहे—'उत्तरी सीमा का वह युद्ध तो समाप्त हो गया, पर देश के भीतर का संग्राम अब तब तक नहीं बन्द होगा, जब तक हम सदा के लिये पूरी तरह से जग न जाएँ! देश से एक युद्ध बाहर का दुश्मन, ईर्ष्या-जलन और राजनीतिक महत्वाकांक्षा के कारण लड़ता है। यह लड़ाई कभी-कभी ही होती है। पर एक अनवरत लड़ाई देश में देश के ही लोग सदा छेड़े रहते हैं—धर्म के नाम पर, जाति और प्रान्त के नाम पर, भाषा के नाम पर ताकि कहीं नीचे तक सर्वव्यापी प्रकाश न फैलने पाए, समाज का वह सम्पूर्ण उदय न हो।'

एक दिन लोहराबीर कृषि कालेज के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और मन्त्री का एक ही साथ हस्ताक्षर किया हुआ एक कागज भोला मास्टर को

मिला, जिसमें प्रिंसिपल भोलाशंकरजी को इस बात की सख्त हिदायत की गई थी कि जब चीन से युद्ध समाप्त हो गया है, तब इस तरह के व्याख्यान देना कि हिन्दू जनता, धार्मिक लोग और अपने यहाँ का सम्भ्रान्त समाज जिससे अप्रसन्न हो—यह ठीक नहीं है। आपका क्षेत्र केवल कालेज की पढ़ाई और उसकी देख-रेख करना है, शेष और कुछ नहीं।

भोला मास्टर को वह कागज असह्य लगा। उन्होंने उस कागज को फाड़कर वहीं टोकरी में डाल दिया।

जनवरी का महीना भी बीत गया। लोहराबीर कृषि कालेज का उद्घाटन न हो सका। उद्घाटन बिना, तीन-चौथाई कालेज की बिल्डिंग ही बन्द।

उसी बीच भोला मास्टर ने सुना कि लखनऊ में एक भवन का शिलान्यास करने के लिए देश के एक नेता आ रहे हैं—भोला मास्टर के प्राणप्रिय नेता। उनके दर्शन के लिए वह उसी दिन लखनऊ पहुँचे। चार बजे शिलान्यास-उत्सव देखकर साढ़े पाँच बजे भोला मास्टर लउनऊ से भाग खड़े हुए। उन्हें लगा कि लखनऊ में बेहोश होकर वहीं वह ढेर हो जाएँगे। उस शिलान्यास के लिए उन्होंने सही-सही पता लगाया, कुल पचहत्तर हजार खर्च हुए हैं। इतने रुपये! बाप रे बाप! इस राष्ट्रीय संकट के क्षण में शिलान्यास के ऊपर इतने धन को इस तरह फूँक देना।

भोला मास्टर को याद आया कि राष्ट्रीय सुरक्षा कोष में किस तरह से एक-एक रुपये आठ-आठ आने पैसे तक देकर गाँव के लोगों ने देश-हित में अपना योग दिया है। वह एक रुपया! कितनी गाढ़ी कमाई का था वह! कितनी आशा और श्रद्धा के भाव थे उस एक रुपये, आठ आने के पीछे।

भोला मास्टर के सामने अन्धकार की एक गाढ़ी परत छा गई ! उस परत में चिनगारियाँ फूट रही हैं। उन चिनगारियों के बीच में एक भौंडी आकृति उभर रही है, दानवी-जैसी, अस्थिपंजर की बनी। वह हाथ चमका-चमका कर हँस रही है।

लोहराबीर के पास ही एक छोटा-गाँव उत्तमपुर है। हर जाति के लोग उसमें बसे हैं। सबके पास उस गाँव में कुछ-न-कुछ अपनी खेती और ज़मीन है। सिर्फ़ वह फलई चमार ही एक ऐसा आदमी है, जिसके पास एक इंच भी ज़मीन अपनी नहीं। जनम-जनम से वह रामदास उपधिया के यहाँ हलवाहा है। ऐसा शुभ हाथ उसका कि उल्टे हाथ ही वह खेत में बीज फेंक दे कि उसमें अन्न-ही अन्न। उसी फलई चमार का सबसे छोटा लड़का बदरी वहीं लोहराबीर में चौथी जमात में पढ़ रहा है। बड़ा ही सुशील, प्रतिभावान और होनहार बालक।

भोला मास्टर ने आस-पास के गाँवों में हल्दी-अक्षत घुमा कर लोगों को खबर कर दी कि कालेज का उद्घाटन बृहस्पतिवार को होने जा रहा है, और शुक्रवार की रात उस खुशी में लोहराबीर की नौटंकी होगी।

भोला मास्टर ने उस दिन कृषि कालेज लोहराबीर का उद्घाटन उसी फलई के बालक बदरी के ही हाथों करा दिया।

जै परमेश्वर की !

जै माँ सरस्वती ! काटो उर बन्धन !

सारी नई बिल्डिंग लहरा उठी। सारे कमरे जगमग। विद्यार्थी फैल कर अपने-अपने अध्यापकों के साथ अपने निश्चित कमरों में जा-जाकर पढ़ने लगे।

भोला मास्टर ने अपने कृषि कालेज का संविधान ही स्वयं इतना

कठोर बना रखा था। अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और मन्त्री, तीनों जिस किसी विषय पर एकमत हो जाएँ तो उस मत की तत्काल पूर्ति उनका विशेषाधिकार होगा।

उसी विशेषाधिकार से संध्या के चार बजते-बजते पण्डित भोलानाथजी प्रिंसिपल कृषि कालेज लोहराबीर—अपने पद से बर्खास्त !

ज़िला शिक्षा इन्सपेक्टर सक्सेना साहब को अपने संग लिये हुए कालेज के अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और मन्त्री सीधे कालेज आये। भोला मास्टर से कालेज का सारा चार्ज लिया जाने लगा, जैसे गाँव में कहीं से सशस्त्र डाकू आ गए हों।

पर वह भोला मास्टर जरा भी विचलित नहीं थे। पर वे तीनों भोला मास्टर पर जल-जल कर खाक हो रहे थे।

भोला मास्टर बड़ी स्पष्ट दृष्टि से मन के उस गहरे स्थान को देख रहे थे, जहाँ उन्होंने ठेस मारी थी, फिर भी वह अनजान बन कर पूछते हैं—"आखिर मुझसे ऐसा क्या अपराध हुआ ?"

अध्यक्ष, उपाध्यक्ष और मन्त्री—ये छः जलती हुई आँखें एक साथ भोला मास्टर की शान्त आँखों में चुभने लगीं।

"अपराध ? तुमने इस कालेज का, यहाँ की ग़रीब जनता का बहुत बड़ा अहित किया है।"

"वह कैसे ?"

"इस कालेज के भविष्य को खत्म करके।"

"मैं कुछ समझ नहीं पा रहा हूँ ?"

"तुम मूर्ख हो।"

"स्वीकार है वह !"

"तुम.....।"

"हाँ-हाँ बोलिये ! रुक क्यों गए ?"

"चुप रहो !"

भोला मास्टर ने उत्तर दिया—"इस कालेज का भविष्य इसलिए खत्म हो गया कि उसके उद्घाटन-समारोह में पचहत्तर हज़ार रुपये नहीं फूके गए ?"

"अरे पचहत्तर हज़ार रुपये क्या तुम्हारी गाँठ से खर्च होते ?"

"फिर कहाँ से खर्च होते ?"

"सरकार से।"

"सरकार के पास वह धन कहाँ से आता है ?" भोला मास्टर ने पूछा।

"इससे हमारा कोई मतलब नहीं।"

"यही तो असली बात है—आप लोगों को न सरकार से मतलब है, न उसके खर्चे से। आप लोगों का मतलब महज़ अपने से है।"

"ज़बान सम्हाल कर बात करो !" अध्यक्ष और मन्त्री ने एक साथ डाँटा, पर भोला मास्टर ने अपनी उसी सधी आवाज़ में कहा—"सरकार का वह पचहत्तर हज़ार हमारी गाढ़ी कमाई का धन है। इस राष्ट्रीय संकट के क्षणों में इस तरह से रुपये को फुँकवाना अपराध ही नहीं, राष्ट्र-द्रोह है ! भोलामास्टर का भावावेश में गला भर आया —आप लोगों को क्या पता है, किस तरह से एक-एक दो-दो रुपये जोड़ कर किस पवित्र भाव से हमारी जनता ने राष्ट्रीय रक्षा कोष में अपना वह योग दिया है !"

अध्यक्ष ने बड़ी नफ़रत से कहा—"ओह तभी तुमने उस चमार के छोकरे से इतने बड़े कालेज का इस तरह से उद्घाटन कराया है !"

भोला मास्टर की आँखों में आँसू उमड़ आए—"आप लोगों के लिए वह चमार का छोकरा होगा, हमारी दृष्टि में वह इस राष्ट्र का एक महान् नागरिक है—तपःपूत संघर्षरत।

वह रचनाकार है हमारे जीवन का। इसलिए वही सुपात्र है, शुभ है, पवित्र है वह !"

अगले दिन रात को कालेज के उसी मैदान में लोरहाबीर की नौटंकी का खेल शुरू हुआ। कुर्बजवार की हज़ारों की संख्या में, गाँव को जनता वह नौटंकी देखने वहाँ उमड़ आई। मंच के तीनों ओर घिर कर बैठे हुए मन्त्रमुग्ध दर्शक। आज पहली बार वह भोला मास्टर अपनी नौटंकी में खुद पार्ट कर रहे हैं।

किन्-किन्-किन्-किन् कुड़ धम्म ! कुड़ धम्म !

अन्यायी हैं जो न्याय का
करते हैं खातमा।
करते हैं दुःखो इस तरह
हम दीनों की आतमा।

एक पर्दा गिरा।

दूसरा उठा। जनता खुशी से तालियाँ पीटने लगी।

भोला मास्टर जी भारतवर्ष बने हैं—भव्य स्वरूप मुख पर तेज।

जो पहले के खेलों में दुर्योधन, रावण और कंस का पार्ट करते थे —वे तीनों आज चीन देश के अजगर बन कर मंच पर खड़े हैं।

जनता साँस खींचे बैठी है।

तभी वह 'कमोडियन आता है। टोपी नचा कर कहता है—हे लेव ! आप लोग इन तीनी चीनियों को पहचानते नहीं क्या ? हे लेव ! अरे ये अजगर को सन्तान हैं ! फूँSSS फूँSSS अरे दादा ! ऐसी फुँफकार !

अच्छा-अच्छा ! ऑलू राइट ! ऑलू राइट ! हम तुम लोगों का जल्दी से नाम बताते हैं !

सुनो पंचो (दर्शकों से) हे लेव ! मुख पर हाथ रख कर हँस रह्यो है ?

तो सुनो पंचो नाम ! ध्यान से सुन्यो ! चीनी की भाषा है—यह चीं चीं चीं चीं कूँ कूँ कूँ कूँ ! हे लेव ई मर्दवा तो कह रहे हैं कि ई चीनी नाम हिन्दी में अनुवाद यानी तर्जुमा यानी 'ट्रान्सलेशन' कर देव ! अच्छा ! फिर कान खोल कर सुनो—नीं नीं नीं इनका नाम है मिस्टर रामनगीना सिंह । कीं कीं कीं कीं, इनका नाम है बाबू किरपा सिंह । दीं दीं दीं दीं इनका नाम है दामोदर सेठ !

सहसा वे तीनों पात्र 'कमेडियन' पर गुस्से से टूट पड़े । उसे तीनों ओर से मारने लगे । तब वह 'कमेडितन' रोता हुआ भारतवर्ष के पास आया—दोहाई धर्मावतार की ! ई तीनों हमें मार डालना चाहते हैं—एक कहता है कि अगर तुझे ठीक से यहाँ रहना है तो लोहराबीर कृषि कालेज का फिर से उद्घाटन होगा—जैसा मैं चाहता हूँ । वह दूसरा कहता है—तुम जाओ भाड़ में, मुझे तो सिर्फ़ अपनी तरक्की चाहिए । और वह तीसरा कहता है कि रामनाम जपना, पराया माल अपना ! ऊँ ! जै भारत ! 'कमोडियन' पेट फुला कर लम्बी-लम्बी डकार लेने लगा ! भारतवर्ष अपने- आप में चिन्ता करने लगा । विचारमग्न । तभी अवसर देख कर वे तीनों उस पर टूट पड़े, उसे घायल करने लगे । भारतवर्ष आश्चर्य-चकित !

तभी वह 'कमेडियन' ज़ोर से चिल्लाया, हे लेव....!

मंच के पास के दर्शक दौड़ कर मंच पर चढ़ गए और उन तीनों चीनियों को पकड़ लिया । भावावेश में उन्हें लोग मारने को हुए कि 'कामेडियन' उनके बीच में फाट पड़ा—हे लेव ! अरे ई नौटंकी है कि कोई सच्ची बात है !

सारी जनता अपनी जगह पर उठ खड़ी हुई ।

दृश्य पर तत्काल पर्दा गिर गया ।

पर लोहराबीर की वह नौटंकी बन्द नहीं हुई । ताव खाई हुई नगरची पूरे स्वर में बजी और उसके साथ वह नगारा घनघना उठा :

किन् किन् किन्
किड़ धम्म ! किड़ धम्म !

और फिर वही पर्दा उठा । लोहराबीर का.....।

सोन मछली

राजपोखर में वह सोन मछली फिर दिखाई पड़ी ; ठीक विजय-दशमी के दिन, तीसरे पहर।

वही सोन मछली !

राजपोखर का वही शुभ देवता ! सोन भवानी !

और उसे देखा राजनाथपुर गाँव के उस धनई तेली ने। वही पचास-पचपन साल का हँसमुखा धनई, जो बोलता है, तो उसके मुँह से बच्चों की तरह अब भी लार टपकती है, जो गाँव-भर में सबसे ज्यादा गरीब है। पर जो गाँव-जवार में अब भी सबसे ज्यादा ईमान-दार है। तभी तो सोन देवता ने उसी पर अपनी किरपा दिखाई है। लो भइया, अब धनई बेचारे की किस्मत जाग गई। धन्य हो ! उस भाग्यवान की किस्मत तो देखो। गायघाट बाजार से वह हमेशा राज-नाथपुरवाली डहर से अपने गाँव आता था—आज से नहीं, पिछले तीस-पैंतीस साल से। पर उस दिन वह उलटे राजपोखरा की बगिया की राह से ऊबड़-खाबड़ मिट्टी-जमीन की ठोकर खाता हुआ गाँव आ रहा था। नंगे बदन। कमर में सिर्फ़ एक फटी-मैली धोती। सिर पर बाँस की दौरी—उसमें कड़ुए तेल का मटका और कुछ सरसों। गाय-

घाट बाजार में उसका तेल नहीं बिका था। लोग सस्ता तेल चाहते हैं, पर बिना मिलावट के तेल सस्ता कैसे हो सकता है ? नहीं, वह चाहे कितना गरीब क्यों न हो जाए, वह अपने कड़ुए तेल में मिलावट नहीं कर सकता। न वह बस्ती-फैजाबाद से कम्पनी का सस्ता तेल ही लाकर अपने कोल्हू के नाम से बेच सकता है।

धनई सिर पर अपनी मली-कुचैली दौरी रखे राजपोखर के किनारे-किनारे चला जा रहा था। सहसा बाईं ओर पोखर के नीलरतन पानी में कुछ झलझल-झलझल चमकने लगा, जैसे गहरे स्थिर पानी में एकाएक चन्द्रमा उग आया हो।

धन्य हो सोन देवता !

सोन भवानी !

विराट रूप ! गिरा अनयन, नयन बिनु बानी। आज तक तो उस देवता सोन मछली के बारे में वह सुनता ही आया था, आज भवानी ने उसे कृपाकर दर्शन भी दिया। उज्जल बरन। रतन-जैसी बड़ी-बड़ी आँखें। मुख पर सोने का बड़ा-सा नथ। माथे पर चन्द्रबेंदी। कान में करनफूल। गले में लिपटा हुआ वह हार। पीछे मोती की लड़ियाँ। इस रूप-बरन से वह सोन भवानी पोखर के पानी में उतराकर धनई तेली को देखती रहीं। धनई वहीं कगार पर लोट गया, "दोहाई मैया की ! जनम-भर का पुन्न आज उदय हुआ माई मोर ! बस मैया, दुइ बखत का खाना, तन ढकने का कपड़ा और साँच की जिन्दगानी, बस····बस !'

धनई तेली के चारों ओर सारा राजनाथपुर घिर गया—बच्चे, बूढ़े, मर्द, औरत—सब। गाँव के अन्धे, लूले अपाहिज अति वृद्ध—सब अपने-अपने बेटे-नातियों को पीठ पर लादकर राज-पोखर के किनारे आये। लोग जै-जैकार करते हुए पोखर का पानी पीने लगे, पानी से

अपनी आँखें सींचने लगे। धनई तेली को परनाम। उसके चरणों की धूल सबके माथे पर।

धनई कैसे क्या बताए उस छवि को! उस विराट भवानी के दर्शन को! उस बेचारे की तो घिग्घी बँध गई। नयनों से आँसू बरस रहे थे।

धन्य हो! आज सुबह-अठारह वर्ष बाद सोन भवानी ने साक्षात् दर्शन दिया। राजनाथपुर ही क्या, आस-पास के सारे गाँव के लोग उस दैवी घटना को सुनकर राजपोखर तक दौड़े आये। सिर्फ वही नाहर कक्का—नरसिंहप्रताप सिंहजी नहीं आये।

नाहर कक्का के दरवाजे पर धनई तेली खुद गया और उसके साथ गाँव की वही मंत्रमुग्ध भीड़। धनई तेली भावावेश में थर-थर काँप रहा था। उसने भवानी के दर्शन की बात कहनी शुरू की। नाहर कक्का बड़ी लम्बी-लम्बी साँस में हुक्का पीते रहे। बिलकुल चुपचाप। न कोई प्रश्न, न कोई कौतूहल। पूरे वैरागी-जैसे बैठे रहे।

नाहर कक्का के सत्य का, उनके विचारों का, कथन का आज इस तरह खण्डन हुआ, उन्होंने अपने पक्ष-समर्थन तक का भी ध्यान न दिया। जैसे वह सब-कुछ भूल गए।

पर उस गाँव-जवार को कैसे सब भूल सकता है? और आज, जब अठारह वर्ष बाद फिर उसी सोन भवानी का इस तरह दर्शन हुआ? धनई तेली को दर्शन! उसका सत्य!

नाहर कक्का के पिता थे—अवधेशप्रताप सिंह। नहीं, भूल हुई—रायबहादुर अवधेशप्रताप सिंह। और रायबहादुर के पिता थे सूरजप्रताप सिंह। राजपोखरा के उत्तर झरबेरिया के जंगल के बीच वह जो छोटा-सा टीला दीख पड़ता है न, जिस पर अब गाँव के चरवाहे गाँव की अदालत सभा की नकल करते हैं—वही सूरज बाबा की असली

बखरी है। लोग बताते हैं कि पूरे सवा दो बीघे में वह पक्की बखरी बनी थी। बीस कमरे थे उसमें। आँगन में शिव का मन्दिर था। सन् सत्तावन के गदर में उन्होंने अंग्रेज सरकार के बागियों को शरण दी थी। इतनी हिम्मत और इतना बड़ा कलेजा! इस अपराध में यद्यपि उनके सात गाँव जब्त कर लिये गए, मगर उनके चेहरे पर वही रोब और मुस्कान!

पर एक करुणा थी सूरज बाबा के जीवन में—उन्हें ईश्वर ने कोई बाल-बच्चा न दिया। सन्तान के लिए उस धर्मात्मा ने न जाने क्या-क्या किया। वह राजपोखरा उन्हीं सूरज बाबा के हाथ का खुदवाया हुआ था, जो गिर-गिराकर भठते-झठते अब ऐसा हो गया है।

सन्तान की ओर से निराश होकर सूरज बाबा एक दिन अपना घर त्यागकर सरजू नदी की ओर चले। साधु-वैरागी बनने। रास्ते में उन्हें एक गड्ढा मिला, जिसमें पानी कम हो चला था और गड्ढे में जगह-जगह कीचड़ उभर आया था। उन्होंने उस कीचड़ में देखा क्या कि एक रोहू मछली उसी कीचड़ में फँसी हुई वहाँ रह-रहकर तड़प रही है। सूरज बाबा ने उस मछली को अपने अंक में लिया। न जाने क्या देखा उस मछली की आँखों में उन्होंने। उसे जल में डालकर उसे लिये हुये वह अपने घर लौट आए। रोती-विलाप करती हुई अपनी पत्नी से हँसकर बोले, "यह लो, हमें एक देव-कन्या मिल गई!"

सूरज बाबा ने उस रोहू मछली का नाम रखा—सोन। और एक दिन सूरज बाबा ने अपनी उस सोन बेटी का शृङ्गार किया—मुख पर सोने की नथ। माथे पर चन्द्रबेंदी। कान में करनफूल—गले में हार, और गले से पूँछ तक पूरे शरीर में मोती की लड़ियाँ। और उसी पोखर के जल के साथ बड़ी धूमधाम से ठीक विजयदशमी के दिन सूरज बाबा

ने अपनी सोन बेटी की शादी कर दी। इससे बाद ही सूरज बाबा को एक पुत्र हुआ—वही अवधेशप्रताप सिंह।

सूरज बाबा नित्य सुबह-दोपहर-शाम चाँदी के थाल में स्वयं बेटी के लिए भोजन लेकर पोखर जाते और उनकी पुकार सुनते ही वह तीर की तरह बाबा के पास चली आती। यह बहुत पहले की बात है, बहुत पहले की····।

सूरज बाबा और उनकी पत्नी के स्वर्गवास के बाद वह सोन मछली जैसे स्वप्न होने लगी। वर्ष-भर में सिर्फ एक बार ठीक विजय-दशमी के दिन वह पोखर के जल में दिखाई पड़ती। गाँव-जवार के लोग उसका दर्शन करने आते और उसे फूल, लाई, प्रसाद चढ़ाते। और धीरे-धीरे विजयदशमी के दिन उस राजपोखर पर सोन मछली का मेला लगने लगा! बताते हैं लोग कि एक दिन अवधेशप्रताप सिंह ने मेले में दूकानदारों से कर वसूल किया, तब से वह सोन मछली अदृश्य हो गई। मालिक को इससे पड़ा पश्चात्ताप हुआ, क्योंकि विजयदशमी के दिन भी वह अब पानी में ऊपर नहीं आती थी। न जाने क्या हुआ उसे! पर मेला लगता रहा।

दो-चार वर्ष में किसी को कभी वह मछली दर्शन दे जाती, तो उसके लिए बहुत बड़ा शुभ सौभाग्य होता। उस वर्ष उसकी खेती में दुगुनी पैदावार होती। गाय-भैंस के थनों में दुगुना-तिगुना दूध बढ़ जाता। उसके घर पुत्र का जन्म होता। और अनेक शुभ फल मिलते उसे।

एक बार भयानक सूखा पड़ा। बड़ा करुण अकाल! इतना कि सूरज बाबा का वह राजपोखर भी सूख गया। तभी वह भुइंलोटना भूकम्प भी आया, जिसमें सूरज बाबा की वह बखरी ढहकर माटी डीह हो गई।

यह बहुत पहले की बात है।

सूखे राजपोखरा की धरती में पपड़ियाँ फट गई थीं। कोई भी उस सूखे पोखर की गहरी ज़मीन पर नहीं उतरता था। लोगों को श्रद्धामय भय था कि पैर के नीचे कहीं वह सोन मछली न दब जाए। उस साल भी विजयदशमी का मेला लगा था। उसकी सूखी धरती पर और भी ज्यादा फल, फूल, लाई, बताशे और प्रसाद चढ़े थे। लोग पोखर के किनारे सैठकर पोखर की सूखी धरती पर कान लगाकर सुनते थे—वह सोन मछली धरती के अदृश्य गर्भ में डोलती-फिरती थी। वह मछली अब बहुत बड़ी हो गई है। वह जिधर से चलती है, उसका चरननाद अनाहद नाद की तरह लोगों के हृदय में अमृत-वर्षा करता। रात को लोग स्वप्न देखते कि वह मछली अपने उसी शृंगार में अपने शुभ-विराट रूप के साथ सबके सामने आती, और अपनी आँखों से बोलती कि पानी बरसेगा। मैं पाताल लोक गई थी, वहाँ से मैं तुम्हारे लिए जल ले आई हूँ। पानी को वहाँ किसी ने कैद कर रखा था। मैंने उससे युद्ध किया था, तभी वह भूकम्प आया था।

सच, नये वर्ष का असाढ़ लगते ही पानी बरसा—खूब बरसा। राजपोखर मुँह तक भर गया। तब वह सोन मछली फिर दिखाई दी। और देखने वाले थे वही अवधेश प्रताप सिंह। कई वर्षों से उन्हें दमा का रोग पकड़े था। सोन मछली के उस दर्शन से उनका वह रोग जाता रहा और उसी साल उन्हें रायबहादुरी का खिताब मिला। लोग बताते हैं कि अवधेश दादू ने अपनी मृत्यु-शैया पर पड़े-पड़े उसी सोन मछली को 'बेटी-बेटी' कहकर पुकारा था और गंगाजल के स्थान पर उसी राजपोखर का अन्तिम जल उन्होंने अपने मुख में डलवाया था।

ऐसी न जाने कितनी कथा-गाथाओं से वह क्षेत्र आज भी भरा हुआ है।

और अब यह नाहर कक्का हैं कि धनई तेली की उस सौभाग्य-घटना से यह इतने बैरागी बन रहे हैं। आज सत्रह-अठारह वर्ष होने को आए, राजपोखर का वह मेला इन्होंने लगने ही न दिया। सन् चालीस की ही तो वह बात है। हाँ-हाँ, ठीक सन् चालीस की—वह बड़की बाढ़ आई थी। जब सरजू मनवर और कुआँनो—ये तीनों नदियाँ एकपट्ट हो गई थीं। राजनाथपुर गाँव के किनारे से जॉन विलियम कलेक्टर साहब की वह बड़ी नाव गुज़री थी। बाप-रे-बाप, इतना पानी! तब उस जॉन विलियम की नाव देखकर गाँव के लोग बहुत डरे थे। सब कानाफूसी करने लगे थे, "देखा, यह बाढ़ का पानी अंग्रेज बहादुर का झोंका हुआ है। नाहर कक्का सच कहते हैं—और सुराजी लड़ाई लड़ो अँग्रेज से! यह कलट्टर की नाव इसीलिए गाँव-गाँव घूम रहो है कि वह इस बात की जाँच-पड़ताल कर रहा है कि अभी और कितने पानी की ज़रूरत है, ताकि पूरा हिन्दुस्तान ही पानी में डूब जाए। बाप-रे-बाप! दुहाई भगवान की! नहीं! जै महात्मा गांधी की!"

धनई तेली सुबह-शाम उस बाढ़ में खड़े होकर यही जै-जैकार बोलता था। नाहर कक्का ने उस जॉन विलियम को चाय पिलाई थी। बहुत बड़े खैरख्वाह थे अंग्रेज़ी राज के नाहर कक्का। उन्होंने जब पगड़ी उतारकर कलट्टर को सलाम किया, तो जॉन विलियम कक्का की ओर देखकर मुस्कराया था। कितनी बड़ी बात थी यह! अंग्रेज़ की मुस्कान! जै महात्मा गांधी की!

दूसरे दिन धनई तेली की यह जै-जैकार नाहर कक्का के कान में पड़ ही गई। कक्का ने धनई के घर में आग लगवा दी। उसे पचास बेंत लगवाए। उसके आठ बीघे खेत ज़ब्त कर लिये। बेचारा धनई भिखारी होकर बैठ गया।

बाढ़ हटते ही परगना बाज़ार में सुराजियों का एक मेला लगा। नाहर कक्का ने अपने तेरह गाँवों की ज़मींदारी में यह ढिंढोरा पिटवा दिया कि यदि कोई भी बालक, बूढ़ा, जवाद, मर्द, औरत सुराजियों के मेले में जाएगा, तो उसको वही सज़ा होगी, जो राजनाथपुर के धनई तेली को मिली है। इसके लिए नाहर कक्का के दो-दो सिपाही हर गाँव में तैनात खड़े रहे। और इन गाँवों का कोई भी सुराजी मेले में न जा सका।

इसके लिए कलेक्टर ने नाहर कक्का को अपना मुबारकबाद भेजा था।

पर अगले ही दिन वही जवान सुराजी न जाने कहाँ से घूमता-घामता उसी राजनाथपुर में पहुँच गया। हाथ में तिरंगा झंडा था। मुख पर अद्‌भुत तेज। वाणी में आग। वह अकेला निर्भय सीधे नाहर कक्का के दरवाजे पर विजय-स्वर में बोल उठा, "भारत माता की जै!"

"महात्मा गांधी की जै!"

"इन्क्लाब ज़िन्दाबाद!"

दोपहर का समय था। उस वक्त नाहर कक्का भीतर गोल कमरे में सो रहे थे। उनके जगते-जगते सारा राजनाथपुर गाँव कक्का के दरवाजे पर इकट्ठा हो गया।

सहसा चोट खाये हुए सिंह की तरह नाहर कक्का आवेश में बाहर आये। कक्का उस सुराजी से जब तक कुछ बोलें कि उसके आगे बढ़कर कहा, "सुना है आपके पास बहुत ताकत और हौसला है! यह लीजिए, उठाइए अपनी बन्दूक और मुझ पर फ़ायर कर दीजिए।"

उसी क्षण मानो आकाश से बरसा हुआ एक पुष्पहार उस जवान सुराजी के गले में आ गिरा। सुराजी ने ऊपर देखा—हवेली के कोठे में खिड़की पर जैसे दो गहन पलकों का एक इन्द्रधनुष खिंचा था। वह

उस स्निग्ध आकाश में देखता रह गया। मन्त्रमुग्ध ! इन्द्र-धनुष !

नाहर कक्का ने कड़ककर कहा, "राजनाथपुर वालों, मैंने कहा था न, कोई भी सुराजी मेले में नहीं शामिल होगा !"

नाहर कक्का के दरवाजे से गाँव की वह सारी भीड़ देखते-देखते ही छँट गई। सिर्फ़ वही धनई तेली, दूर बरगद के पेड़ के नीचे बैठा रहा। न जाने क्या देखने के लिए।

कक्का साहेब ने सुराजी से कहा, "अपने गले की यह फूल-माला धीरे से उतार दो !"

"आखिर क्यों ?" सुराजी ने पूछा।

"क्यों यह मेरा हुकुम है !

"नहीं ! यह जयमाल मेरा है !"

"क्या कहा ?"

नाहर कक्का ने आँखें घुमाकर अपने सिपाहियों को हुक्म दिया, "दबा करो इसकी !"

एक सिपाही ने सुराजी के गले से फूल की माला नोच ली। दो सिपाहियों ने सुराजी को मारना शुरू किया। ऊपर आकाश में खिचा हुआ वह दो पलकों का इन्द्रधनुष चौंककर रो पड़ा। दूर बरगद के पेड़ के नीचे बैठा हुआ धनई तेली चिल्लाता हुआ गाँव में दौड़ा।

सुराजी कहता जा रहा था, "इसी हिंसा को तुम अपनी ताकत समझते हो ? यह ताकत नहीं, बुज़दिली है बुज़दिली ! जै गांधी ! जै अहिंसा !"

सिपाही रुक गए।

गाँव वाले दूर-दूर पर घिर आए।

सुराजी वहीं घायल मृग की तरह बोलने लगा, हिंसा का तुम्हारा यह राज्य भले ही शरीर पर चल जाए, पर इस शरीर के भीतर जहाँ

प्राण है, मन और आत्मा है, उसका तुम क्या करोगे ? मैं यहाँ आया, पर····!"

बोलते-बोलते सुराजी रुक गया। न जाने क्यों उसका गला भर आया।

फिर बोलने को हुआ, "इस हिंसा में कहीं वह कोमल, शुभ महान····"

उसके कण्ठ में कुछ बरबस झरने लगता। उसकी आँखें बरस पड़ीं।

वह कुछ कहना चाहता था, "मैं तुम्हारी शक्ति को नष्ट कर सकता हूँ, मेरे पास सत्याग्रह का अमोघ अस्त्र है। पर····पर····यहाँ के आकाश में एक चन्द्रमा है, एक इन्द्रधनुष—उसके अमृत का रस····। वह, जो पूज्य है, पावन और पवित्र है····"

सुराजी की वाणी में कुछ रह-रहकर काँप उठता था। उसकी आँखों में जैसे कोई अज्ञात इन्द्रधनुष खिंच उठता था। उसने आकाश की ओर सिर उठाकर अपनी आँखें मूँद लीं, "जै भारतदेवी !"

सुराजी ने नाहर कक्का के दरवाज़े की धूल को अपने माथे पर चढ़ा लिया, और वह अपना माथा उठाए वहाँ से चल पड़ा। सामने वही धनई तेली हाथ जोड़े खड़ा था।

धनई, सुराजी को अपनी झोंपड़ी में ले आया। गाँव के लोग छिप-छिपकर सुराजी से मिलने आये। पाटन बाबा गाँव के सबसे बूढ़े किसान थे। सुराजी को अपने अंक में भरकर वह बहुत रोए, "हमें छमा करो सुराजी, इस गाँव की भूमि पर तुम्हारा इतना अपमान हुआ !"

सुराजी ने पाटन बाबा को उत्तर दिया, "मेरा अपमान ! नहीं बाबा, मेरा तो मान हुआ है। इस गाँव की भूमि ने जो भाव मुझे दिया है, वह····"

सुराजी की वाणी फिर काँपने लगी।

रात को—काफ़ी रात गए, धनई तेली की झोंपड़ी में एक औरत आई—कक्का की बखरी की नौकरानी। उसने सुराजी के हाथ में न जाने क्या छिपाकर दिया। और उत्तर लेने के लिए वहीं खड़ी रही।

सुराजी को लिखी वह पाती आँसुओं से भीगी थी। और उसके हर शब्द से पुष्पगन्ध आ रही थी—वही पीले कनेर की सुगन्ध, जिसके जयमाल का स्पर्श सुराजी की आत्मा में उतर आया था। राजनन्दनी के उस पत्र को सुराजी ने अपनी आँखों से स्पर्श किया। उसकी आँखों से आँसू झरने लगे। वह जब उत्तर लिखने लगा, तो उसके हाथ काँप रहे थे। वह सिर्फ़ इतना ही लिख पाया, "दिव्यरूपिणी, तुम्हारा जयमाल मेरे प्राणों में रहेगा! कनेरपुष्पी! प्रेम····बलिदान····। सदा से तुम्हारा ही रत्नाकर।"

अगले दिल राजनन्दिनी के तीन पत्रों को अपने हृदय में सँजोए सुराजी रत्नाकर राजनाथपुर से सरजू पार चला गया। हनुमानगंज बाज़ार में उसे सुराजी मेला लगाना था।

गाँव में धनई तेली और पाटन बाबा आपस में बातें करते रहे, "देखो ईश्वर भगवान की माया! न जाने कहाँ का रहने वाला यह सुराजी, किस भागवान माई-बाप का यह लाड़ला सुन्दर बेटा! कहता है तुम सब मेरे माँ-बाप हो! यह सारी पृथ्वी एक ही भारतमाता है।···· कैसा जुलुम किया नाहर कक्का ने उस निर्दोष के संग! जयमाल तो उन्हीं की इकलौती बेटी राजनन्दिनी ने उसके सिर पर फेंकी थी।"

बातें करते-करते धनई तेली रो पड़ता। पाटन बाबा उसे समझाने लगते, "धनई हो, यह परेम ऐसा होता ही है! सोचो यही कि सुराजी राम था और वह बेटी सीता थी। दोनों ने एक-दूसरे को जनकवाटिका में देख लिया। फिर क्या था!

"कहहु सखी अस को तनुहारी, जो न मोह यह रूप निहारी।

थके नयन रघुपति छवि देखें, पलकन्हहू परिहरीं निमेषें।
लोचन मग रामहिं उर आनी, दीन्हें पलक कपाट सयानी।"

यह कहते-कहते पाटन बाबा का कण्ठ भर आता। और तब वह पूजा-स्वर में कह उठते :

जौ विधिवस अस बनै संजोगू,
तौ कृतकृत्य होंय सब लोगू।

दूसरे दिन रात को राजनाथपुर में कक्का के सिपाही दौड़ने लगे। बखरी से राजनन्दिनी बेटी कहीं भाग गई। रातों-रात कक्का के सिपाही सारे रेलवे स्टेशन—बस्ती, टांडा, चुरेब, मुंडेरवा पर दौड़े। सरजू नदी के सभी घाट—सलोना, फूलपुर नौरहनी, मयंदी, चहोड़ा, रामबाग—पर जाकर सिपाही तैनात हो गए।

पर राजनन्दिनी का कहीं पता नहीं।

दौड़ो-छानो, वह सुराजी कहाँ गया?

नाहर कक्का खुद अपने संग पाँच सिपाहियों को लिये हुए सुराजी के पीछे दौड़े। सुराजी हनुमानगंज से बसखारी बाज़ार चला गया था। अस्पताल के पीछे लम्बे मैदान में हज़ारों आदमियों की भीड़ में वह लैक्चर दे रहा था। अपूर्व जोश और देश-प्रेम उफन रहा था उसकी वाणी में। राजनन्दिनी मंच पर सुराजी के बगल बैठी हुई थी।

भाषण खत्म होते ही नाहर कक्का ने नन्दिनी को पकड़ना चाहा, मगर नन्दिनी ने निर्भय होकर कहा, "मैं मुक्त हूँ अब! मैंने इनसे विवाह कर लिया है।"

नाहर कक्का के पैर के नीचे की धरती एक क्षण के लिए घूम गई।

"ठीक है। पर विवाह का कर्मकांड तो होना शेष है। चलो तुम

दोनों मेरे साथ घर। घर पर इस विवाह का कर्मकांड तो पूरा करना ही होगा। तुम मेरी इकलौती बेटी....। मेरी मान-मर्यादा....।"

राजनन्दिनी और रत्नाकर दोनों ने झुक कर नाहर कक्का के पैर छुए। और सबको अपने साथ लिये हुए कक्का राजनाथपुर के लिए रवाना हुये।

सरजू के नौरहनी घाट पर पहुँचते-पहुँचते दिन डूबने को आ गया था। दिन-भर की तेज पुरवाई बह कर थक गई थी। भादों के अन्तिम दिन। खूब बढ़ी हुई लबालब सरजू। इस पार नौरहनी घाट तो उस पार सिकन्दरपुर के मिसिर लोग की बगिया। बीच में डेढ़ मील सरजू की धार। तोड़ खाकर बहता हुआ उसका तेज़ पानी—मटमैला पानी। और आकाश में वर्षान्त के मोटे बड़े-बड़े धवल बादल—जिन पर डूबते हुए सूरज की लालिमा पड़ रही थी और वे बरबस रक्ताभ हो रहे थे।

नाव पर बीच में सुराजी और उसके बगल में राजनन्दिनी—दोनों प्रसन्नचित्त बैठे थे। सुराजी आकाश के बादल देख रहा था। राजनन्दिनी उसे देख रही थी।

सहसा मझधार में आकर नाहर कक्का की नाव रुक गई।

झटपट दो सिपाहियों ने पहले राजनन्दिनी को पकड़ लिया। शेष तीन ने बिजली की तरह सुराजी के हाथ-पाँव बाँध कर उसे सरजू की धार में डाल दिया।

राजनन्दिनी की वह चीख—सिकन्दरपुर के ताल में चरते हुए सारस के जोड़े डर से उड़ गए, सरजू के दोनों पार उड़ते हुए खंजन, सींकपताई और चहा के जोड़े चीखने लगे। जैसे पूरी सरजू की धार पर किसी निर्दयी बहेलिये ने एक ही साथ सैकड़ों बन्दूकें चला दी हों!

राजनन्दिनी विलाप करती हुई जो कह रही थी, उसे नाहर कक्का नहीं सह पाते थे। उन्होंने हार कर नन्दिनी का मुँह बँधवा दिया।

उसी दिन क्वार शुरू हुआ था। बिलकुल भोर का समय। गाय-घाट के शिव-मन्दिर में पूजा करके पाटन बाबा अपने घर आ रहे थे। उसी राजपोखर के रास्ते। सोन भवानी को प्रणाम करने के लिए पाटन बाबा जैसे पोखर के घाट पर गये—उन्होंने अचरज से देखा—पोखर की भरी हुई छाती पर कोई बड़ी-सी चीज़ उभरी पड़ी है—लाल रंग की!

"अरे बाप-रे-बाप! हमारी सोन मछली तो नहीं है! किसी ने उसे मार तो नहीं दिया! हे परभू!"

पाटन बाबा उसी एक साँस में पोखर के शान्त नीले जल के सागर में तैरते चले गए, आशंका से थर-थर काँपते हुए।

राजनन्दिनी!

पाटन बाबा आर्त चीख से विलाप उठे। राजनन्दिनी बेटी का शव! क्या शृंगार था बेटी का! लाल रंग की बनारसी साड़ी। माँग में भरा सिंदूर। कलाई में सबुज रंग की सजी हुई चूड़ियाँ। नाक में नथुनी, कानों में बालियाँ, गले में हार। पैरों में पायल-बिछुए। पाटन बाबा सनकते हुए नाहर कक्का के पास पहुँचे। कक्का को धीरे से बताया। कक्का निश्चल। गम्भीर—जैसे स्थितप्रज्ञ।

तब तक दिन नहीं निकला था। कक्का ने राजनन्दिनी का शव बन्द डोली में रखवा कर सरजू के तट पर भेज दिया। मगर नौरहनी घाट पर नहीं। फूलपुर के कँकरहवा घाट पर। जल-प्रवाह नहीं। सम्पूर्ण दाह। और शेष राख वहीं ज़मीन में पाट दिया गया। उस राख को भी सरजू के जल का स्पर्श तक न मिल सका।

यह बहुत पहले की बात है।

इसे आज सत्रह-अठारह वर्ष हुए।

तब से आज तक नाहर कक्का ने राजपोखर पर सोन मेला न लगने दिया। उनका कहना था कि पोखर की वह सोन मछली सन

चालीस की उस भयानक बाढ़ में—जब कि राजपोखर से लेकर मनवर कुआँनो तथा सरजू इन सबका पानी एकपट्ट हो गया था—राजपोखर से कहीं बह कर निकल गई। जब वह सोन मछली ही नहीं, तो मेला किस बात का!

ठीक ही कहते हैं नाहर कक्का।

तब से वह राजपोखर सूना हो गया। आज इतने वर्ष बीत गए, तब से इतनी विजयादशमियाँ चली गईं, सच वह सोन मछली कहीं बह गई।

और इतने वर्षों बाद उसी राजपोखर में वही सूरज बाबा की सोन मछली—सोन बेटी फिर प्रगट हुई ठीक उसी विजयादशमी के दिन तीसरे ही पहर। वही रूप, वही बदन, वही आभूषण—जैसे कोई सुहागिन सजी हो। अपने पिया के आँगन में डोलती हुई। सूरज बाबा ने अपनी इस सोन बेटी का ब्याह इसी पोखर के जल से ही तो किया था। तो सुहागिन इस पोखर के जल से दूर कहाँ जाएगी?

और उस सोन मछली ने इतने दिनों बाद उसी धनई तेली को दर्शन दिया। अब उस बेचारे की किस्मत जाग गई। अब वह जिस परती को भी तोड़ कर बाएँ हाथ से भी गेहूँ-धान बो देगा, उसमें अन्न बरस जायगा, उसके कोल्हू के शुद्ध सरसों के तेल में ही अब बहुत बरकत होगी।

और राजपोखर के जल सागर में वह सोन मछली सदा जीवित रहेगी। वही बरन, वही रूप, वही शृंगार। सूरज बाबा की वही सोन बेटी।

अभिमन्यु नाटक

तीन तरफ बड़े-बड़े गाँव थे, दक्खिन ओर सेमरी बाजार। बीच में वह चिरई डाँड़ का मैदान। ऊसर जमीन। यहीं पर सेमरी बाजार की ओर पहली पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत अव्वल दर्जे का 'प्रोजेक्ट' खुला था। नाम था ब्लॉक डेवलपमेंट—विकास क्षेत्र।

विकास केन्द्र खुलने के पूर्व सेमरी बाजार की कच्ची सड़क पहले ईंटों से पक्की की गयी। फिर यही बाजार की लाल सड़क सेमरी कसबे से उत्तर तरफ बढ़कर साहु के पोखरा, फिर दूबे की बगिया के किनार से होती हुई चिरई डाँड़ मैदान के शुरूआत में ही थम गयी थी—पंचम के पँचपेड़वा में।

आज पँचपेड़वा के ही चारों ओर 'बलाक' की सारी एक से एक बिल्डिगें खड़ी हैं—चमाचम। कितने तो विभाग—सार्वजनिक अस्पताल, बीज भंडार, ग्राम सेविका सेंटर, स्वास्थ्य विभाग, महिला विभाग, वाचनालय, शिशु क्रीड़ा केन्द्र और कितने-कितने तो अफसर—बी. डी. ओ., ए. डी. ओ., बी. यल. डब्लू., डाक्टर, मिडवाइफ, मवेशी डाक्टर, मलेरिया डाक्टर, हैजा-चेचक डाक्टर। सबका अलग-अलग क्वाटर। अलग-अलग क्षेत्र, अधिकार।

और सामने ही बड़े भारी बोर्ड पर सफेद अक्षरों में लिखा है : 'विकास क्षेत्र सेमरी बाजार।' अब जो इधर से गुजरता है, तो हाथ जोड़ कर पहले पंचम बगिया को प्रणाम करता है—धन्य हो पंचम बाबा, जहाँ कौवा-सियार नहीं आवत रहिन, उहाँ ई स्वर्ग ! धन्य है तुम्हार माया !

बहुत दिन नहीं हुए, इस पूरी जमीन के मालिक पंचमसिंह थे। बड़े नामी जमींदार। प्रजापालक। बन्दूक और तलवार चलाने का पुश्तैनी शौक। कहीं पर, किसी पर भी कोई जुल्म हो, पंचमसिंह बन्दूक और तलवार लेकर सामने। पंचमसिंह के बाद हुए उनके लड़के जालिमसिंह। तित्तिल लड़ाने और खरहा मारने का उन्हें बड़ा शौक। उन्हीं के जमाने में यह चिरई डाँड़ बिका था—नगर के महाजन के हाथ। फिर आये जालिमसिंह के लड़के बेहुलासिंह। कुश्ती और अखाड़ा लड़ने के बड़े शौकीन। रामलीला और नौटंकी के प्रेमी। और रक्त में वही प्रजापालन का भाव। जमींदारी तो अभी इन्हीं के ही समय में टूटी थी न ! सो उसको अभी कितने दिन हुए।

बेहुलासिंह वल्द जालिमसिंह, साकिन राघवपुर, तप्पा सोहरगंज, थाना रेमूपुर, तप्पा उजियार जिला बस्ती—यह सब एक इश्तहार के साथ यू० पी० सरकार के एक अखबार में छपा था। इश्तहार बहुत खराब था। बेहुलासिंह की गिरफ्तारी की बात उसमें छपी थी। यह उस समय की बात है जब सेमरी बाजार के इस विकास क्षेत्र की नींव पड़ रही थी। बहुत बड़ा जलसा हुआ था इस पंचम की बगिया में। यस० पी०, कलक्टर, हाकिम, हुक्काम सब आये थे। और इस बगिया में सारा जवार जुटा था। उस जलसे में लखनऊ के वे मन्त्री जी आये थे और जनता के बीच अपना भाषण कर रहे थे : 'इस विकास क्षेत्र के खुलने का उद्देश्य यह है कि आप लोग शरीर से ताकतवर बनें....।'

इसी बीच बेहुलासिंह खड़ा होकर बोल पड़ा था : 'साहेब, कहाँ कै बात आपौ करत हैं ! यहाँ चार दिन जो कसरत करे, दो दिन अखाड़े में जाय, तो अगले दिन उसका नाम थाने में दर्ज ! देखो न, इतने पंच में है कोई जवान आदमी ! साहेब....।'

पुलिस दरोगा ने बेहुला को आगे बोलने न दिया। बेहुला बैठ गया। पैंतालिस साल की उसकी उम्र। बड़ी-बड़ी आँखें। फड़कती हुई उसकी भुजाएँ। कई कांस्टिबिल उसके आस-पास खड़े हो गये। खुद बड़े इंस्पेक्टर साहब उसके पीछे तैनात।

मन्त्री साहब ने आगे कहा था : इसका उद्देश्य यह है कि आप लोग तन, मन और धन से तरक्की करें। यहाँ सुख-शान्ति की वर्षा हो....।' बेहुलासिंह फिर खड़ा होकर बोल पड़ा : 'दोहाई सरकार की ! ई अफसर लोग जब खुद पहले तन-मन-धन से तरक्की कर लेंगे, तब कहीं हमार सबका नम्बर आयेगा....और तब तक कौन जिन्दा रहता है साहेब ! वही मसल है साहेब कि घरी में घर जरै, सात घरी भद्रा !"

लोग बताते हैं कि पुलिस दरोगा, इंसपेक्टर, सभी लोगों ने दौड़-कर बेहुलासिंह को जबरन बैठा दिया था।

तो उधर विकास क्षेत्र सेमरी बाजार की नींव पड़ी थी और इधर बेहुलासिंह पर दफा तीन सौ तिरपन की कारवाई हुई थी। और सरकार के अखबार में वही इश्तहार छपा था—बेहुलासिंह वल्द जालिमसिंह, साकिन राघवपुर, तप्पा सोहरगंज थाना....। बेहुलासिंह ने सरकार के काम में दखल दिया। बेहुलासिंह सरकार बहादुर की.... वगैरह-वगैरह।

यह तो पहले की बात है।

अब तो सेमरी बाजार का यह विकास क्षेत्र खुल गया न। यहाँ जो

पहले बी. डी. ओ. साहब आये थे, ओह, भला-सा नाम था उनका—श्री यशोदानन्दन त्रिपाठी, एम. ए., साहब बड़े ही हंसमुख आदमी थे। खुद वे बेहुलासिंह के दरवाजे पर गये थे। बेहुलासिंह उनका पैर थामकर रो पड़ा था—"साहेब, तुम्हीं बताओ, मैंने ऐसा क्या किया था कि मुझपर दफा तीन सौ तिरपन की कारवाई हुई ? मुझे समझाय देव, सरकार, ताकि मुझे सन्तोष हो जाय !" पर वे बी. डी. ओ. साहब बेहुला को कुछ नहीं समझा पाये थे। लाल झंडा लिये बस्ती से एक आदमी आया था। उसका नाम था कामरेड बाबू। उसने भी बेहुला को समझाना चाहा था, पर बेहुला की समझ में कुछ नहीं आया था। यह कई साल पहले की बात थी।

आजकल तो सेमरी बाजार का विकास क्षेत्र काफी तरक्की पर है। चारों ओर अमन-शान्ति है।

अब मिडवाइफ का डिपार्टमेन्ट सेमरी बाजार में चला गया है—घूरे साहु के घर में। घूरे साहु के घर में तीन बार डाका पड़ा था। सो घूरे साहु भिखारी हो गये बेचारे। उनके दोनों लड़के बाल-बच्चों सहित पुरानी बस्ती चले गये—अपना यह बाप-दादों का घर छोड़कर। पर घूरे साहु ने अपना यह घर नहीं छोड़ा। एक कमरे में अकेले खुद रहते हैं। बाकी सारा मकान दस रुपये महीने पर सरकार को दे दिया है। इसमें अब एक बड़ी मिडवाइफ रहती है, एक बड़ी दाई, एक छोटी दाई और एक चौकीदार।

छपाई-बुनाई का डिपाट भी ब्लाक बिल्डिंग से यहीं बाजार में ही चला आया है—गनेशीलाल के खलंगे में।

सरकार बेचारी क्या करे ब्लाक बिल्डिंग में इतनी बड़ी-बड़ी चोरियाँ जो होती हैं। पहलेवाली वह बंगालिन मिडवाइफ बेचारी किस तरह लुट गयी ! उसका एक-एक कपड़ा और बरतन तक चोरों

ने न छोड़ा। वे बेचारे उद्योग-धन्धों के ए. डी. ओ. साहब मिश्राजी गाजीपुर वाले, जो कितनी बढ़िया कजरी गाते थे—'अरे रामा सावन बीता जाय, बलम घर नाहीं रे हरी !' उनको तो चोरों ने भिखारी ही बना दिया। यहाँ से रातों-रात बेचारे अपना तबादला ही करा के भागे। तभी से ये दोनों डिपाट ब्लाक को छोड़कर सेमरी बाजार के कसबे में आ गये। पर तब से सेमरी बाजार की दशा और खराब हो गयी। पहले से ही यह बाजार डाँकेजनी से टूट चुका था। अब यहाँ खंडहरों में, छोटी-छोटी पूँजीवाले बनियों के घर आये दिन चोरियाँ होती हैं। दिन दहाड़े सीनाजोरी....।

डाँके और बेरोजगारी से तबाह, उजड़ा हुआ सेमरी बाजार परेशान, भयभीत। पर क्या करे, सरकार भी तो अपनी कोशिशों में कोई कमी नहीं रख रही है।

बाजार का दिन था। रेमूपुर के थानेदार बस्ती से बड़े इंसपेक्टर साहब, बी. डी. ओ. के साथ सेमरी बाजार में आये थे और सेमरी बाजार की सुरक्षा के विषय में नागरिकों से बातचीत कर रहे थे। वह मीटिंग हाजी साहब के चबूतरे पर हो रही थी। मीटिंग में बेहुलासिंह भी था। भरी सभा में बेहुला ने साफ कहा कि साहेब, चाहे मारो चाहे जिआवो, साफ बात ईहै कि जिस दिन पुलिस इधर गश्त लगाती है, उसके दूसरे ही दिन बाजार में चोरी होती है। यह सात साल से मैं बराबर देख रहा हूँ।'

"चुप रहो बेहुलासिंह ! चोरों के सरदार तुम हो....!"

रेमूपुर के थानेदार के मुँह से गुस्से में यह बात सहसा निकली। बस्ती से बड़े इंसपेक्टर साहब ने थानेदार को डांट दिया।

"हाँ, कहो बेहुलासिंह, तुम निडर होकर अपनी बात कहो।"

"सरकार, अब हम का निडर होई ? जा दिन से तुम लोग इस

बेहुला को तीन सौ तिरपन दफा में फाँस कै जेहल घुमाय दिहो...."

बेहुलासिंह का गला भर आया। उसने अपने दायें देखा, वहीं घूरे साहु बैठे थे। बेहुलासिंह ने अपने को संभालते हुए कहा, "साहुजी हो, एक बीरा खैनी बनाओ।"

साहु के पास आज खैनी नहीं थी। उन्होंने किसी और से माँगकर बहुला के लिए खैनी बनायी।

खैनी मुँह में डालकर बेहुला ने कहा, "साहब, हम तो एक बात जानी थै—हाथी घूमे गाँव-गाँव, जेकिर हाथी वही कै नाँव, सो नाम तो दुनियाँ सरकारै के लेई। वही सरकार। वही भारत माता। इतनी इतनी चोरी, डकैती, सीनाजोरी कांहें होत है ? आज इतने बरस बीत गये, इस विकास क्षेत्र सेमरी बजार ने क्या किया ? सेमरी बजार तो उजड़ती ही जा रही है। सेमरी जब खुद सेमरी को ही न बचा सकी तो...."

"क्रैक हेडेड !" थानेदार ने अपने आपसे इंसपेक्टर साहब को सुनाते हुए कहा। बी. डी. ओ. ने मुसकराकर इसका समर्थन किया।

"तुम्हारे कहने का मतलब क्या है ?" इंसपेक्टर साहब ने पूछा।

"मतलब, साहब ! हम पचन का जानी मतलब ! गाँवन से सूद बाबर, अहिर चमार, की जवान लड़की भाग-भाग यहाँ फिलिम के गीत सुनै ! मिडवाइफ के डिपाट में दाई बनै ! और बाप-ससुर, भाई-पति जब उन्हें बुलावै आवैं तो वही दफा तीन सौ तिरपन की उन्हें आँख दिखाई जाय और बेहुलासिंह कै उदाहरन दिया जाय !"

"चुप रह हो बेहुला ! भीड़ में से किसी बुजुर्ग की आवाज आयी। "सरकार का नाहीं जानत ई सब, जो तूं बकर-बकर बतियावत हया !"

"बेहुला हो, चुप रहा तूं !"

भीड़ में से कई लोगों ने बार-बार यही कहा। बेहुला सिर नीचा

करके बिल्कुल चुप हो गया। अन्य और लोगों से बातचीत करके इंसपेक्टर साहब ने सेमरी बाजार के लोगों से उनकी रक्षा के लिए एक नयी योजना बनायी। 'सेमरी बाजार युवक दल' उसका नाम दिया गया।

फिर मीटिंग खतम। और अफसर लोग बी. डी. ओ. के बंगले पर चाय-नाश्ता करके अपनी-अपनी जगह चले गये।

बात असल यह थी, बेहुलासिंह ने इस मीटिंग में मारे लाज के पूरी बात नहीं बतायी थी। खुद अपने गाँव राघवपुर की बेइज्जती की बात थी न वह। राघवपुर की चमरटोलिया की वह लड़की, चोन्हरी उसका नाम है। जबान पट्ठी ससुरी। ऊपर से गोरहर चमड़ी। बड़ी सुन्दर लगाती है अपने को। पर बाबू, साफ बात यह कि चोन्हरी उसका नाम ही भर है, है वह बड़ी खूबसूरत। कटारीमार ! उसकी शादी हुई है लोहराडांड़ गाँव में। चोन्हरी के बाप बीपत चमार ने उसका अभी पिछले साल गौना किया, पर वह चोन्हरी है कि एक दिन भी लोहराडांड में न रही।

अब इधर लोग बताते हैं कि वह चोन्हरी मिडवाइफ के यहाँ रहती है। दाईगीरी में। और वहाँ चोन्हरी की बदौलत बड़ा रंग रहता है। वह विकास क्षेत्र सेमरी बाजार के अफसरों के सामने 'फोक डांस' और 'फोक म्यूजिक' के नमूने देती है।

चोन्हरी का बाप बीपत चमार और चोन्हरी का पति खदेरू, ये दोनों सब तरह से हारकर अन्त में बेहुलासिंह की शरण में आये कि 'धर्मावतार, हमार इज्जत राखो।'

बेहुलासिंह तो बेहुलासिंह ! उसने अपनी शक्ति लगा दी, पर

नाकामयाब। अरे, चोन्हरी कहीं दिखे तब तो! वह तो लापता रहती है। बेहुला ने बेवक्त कई बार मिडवाइफ के यहाँ चोन्हरी के लिए छापा मारा। पर मिडवाइफ ने बार-बार अपना रजिस्टर दिखाकर बताया कि वह छुट्टी पर है या वह बाहर डियुटी पर गयी है।

'सेमरी बाजार युवक दल' की भी शक्ति कुछ नहीं कामयाब हो रही थी। बेचारे बनियों के सीधे-सादे लड़के, सरकार से तो वे खुद थर-थर काँपते थे, वे लोग क्या मिडवाइफ से चोन्हरी के लिए पूछते! बेचारे 'युवक दल' के लड़के दो दिन प्रभातफेरी के बहाने उधर से गुजरे, पर कहीं भी उन्हें चोन्हरी न दीख पड़ी।

विकास क्षेत्र सेमरी बाजार का विकास मेला हो रहा था। आखिरी दिन था वह। पंचम के पंचपेड़वा तले बहुत बड़ा तम्बू लगा था। जनता के मनोरंजन और लोक-रंगमंच की तरक्की के लिए बी. डी. ओ. साहब वहाँ नाटक करा रहे थे। नाटक मंडली थी लालगंज की। वे लोग अभिमन्यु नाटक खेल रहे थे।

बेहुलासिंह की उमर जब पचीस साल की थी, तब, उसने भी अपने गाँव में एक नाटक मंडली चलायी थी। नाम उसका रखा गया था 'राघवपुर नाटक मंडली'। मंडली ने कई सालों तक खूब नाटक खेले थे—हरिश्चन्द्र नाटक, अभिमन्यु नाटक, राम-रावण नाटक, भक्त प्रह्लाद नाटक, ध्रुवचरित नाटक। तब वे लोग राजा भरथरी नाटक की तैयारी में लगे थे, पर उन्हीं दिनों दफा तीन सौ पंचानबे में उस मंडली के तीन आदमी फंसाकर जेल में डाल दिये गये और वह मंडली सदा के लिए टूट गयी। वे तीन आदमी थे—एक रामप्रसाद पांडे हरमुनिया मास्टर! दूसरे थे रामजतन सिंह जो हरिश्चन्द्र, रावण आदि के बड़े-बड़े पार्ट करते थे। तीसरा था जोगीनथवा कँहार—कमेडियन। बेहुलासिंह ने अपने इन तीनों दोस्तों को दफा तीन सौ

पंचानबे (डांका केस) से बरी कराने के लिए क्या-क्या नहीं किया था। अपनी औरत का सारा गहना बेंच डाला था। फिर 'राघवपुर नाटक मंडली' का एक-एक सामान और परदा भी इसी भाग में उसे स्वाहा करना पड़ा था। माटी के मोल वे बेशकीमती सामान और परदे इस मुकदमे की पैरवी में बेचने पड़े थे। उसे याद करके बेहुलासिंह का दिल आज भी धधक पड़ता है।

बेहुलासिंह तब 'अभिमन्यु नाटक' में अभिमन्यु का पार्ट करता था—हृदयविधारक पार्ट। चक्रव्यूह वाले दृश्य में जब वह अभिमन्यु सातों महारथियों के साथ विकट युद्ध करता था, तो बेहुलासिंह का बल और पराक्रम सच आश्चर्य चकित करने वाला होता था। और वह अभिमन्यु-वधवाला दृश्य! बाप रे बाप! अभिमन्यु का वह हृदय-विदारक रुदन सारी जनता का दिल चीर देता था। दर्शकों में से कोई ऐसा नहीं बचता था जो अभिमन्यु के विलाप में फफककर रो न पड़ता हो। माता सुभद्रा, हृदेश्वरी उत्तरा, पिता अर्जुन, मामा कृष्ण का नाम ले-लेकर वह इस मर्मभेदी स्वर में रोता था कि सुनने-देखने वालों का दिल पीपल के पत्ते की तरह कांप उठता था। वाह रे अभिमन्यु! वाह रे बेहुलासिंह! कहाँ से तुम भैया यह अपने कलेजे का करुण संगीत इस तरह से सुनाते हो?

दर्शकों की बहुत बड़ी भीड़ नाटक खत्म होने के बाद बेहुलासिंह को घेर लेती थी। और उस भीड़ में बेहुलासिंह गाय की तरह सिर झुकाकर चुपचाप खड़ा रह जाता था।

उन दिनों का एक मर्मभेदी प्रश्न बेहुलासिंह को आज भी याद है। तराई में कहीं 'राघवपुर नाटक मंडली' अपना यही अभिमन्यु नाटक खेल रही थी। नाटक के बाद एक बड़ा ही गरीब बूढ़ा आदमी, जिसके सारे केश पक चुके थे, मुँह में दाँत नहीं था, बदन पर चिथरा

ओढ़े था। जाड़े की रात थी वह। उसने बेहुलासिंह से एक प्रश्न किया था कि 'ये मोर बबुआ, तनी हमका समझावा, ई अभिमन्यु यहि तरह रोय काहें पड़ा? अगर वोका रोना ही था, तो वह लड़ने ही क्यों आया? कौन वह पर आफत पड़ी रही?' बेहुलासिंह के सामने उस बूढ़े गरीब आदमी का वह प्रश्न आज भी उसी तरह तना खड़ा है। उसका कोई उत्तर नहीं। जैसे कि बेहुलासिंह के दफा तीन सौ तिरपन वाले प्रश्न का आज तक कोई उत्तर नहीं था।

और आज रात को अभिमन्यु नाटक में बेहुलासिंह से सामने वही अभिमयु-विदा, उत्तरा-विलाप, चक्रव्यूह-युद्ध, अभिमन्यु-वध और अभिमन्यु-विलाप के दृश्य एक के बाद एक आते गये। आज बेहुलासिंह खुद उस मंच पर रोते हुए अभिमन्यु से वही सवाल पूछना चाह रहा था। पर हिम्मत नहीं हो रही थी। लोग कहने लगेंगे, बेहुलासिंह बन रहा है। अपना ज्ञान दिखाना चाहता है। जिन्दगी भर तो खुद अभिमन्यु का पार्ट किया और आज चला है वही सवाल करने!

बेहुला चुप रह गया। पर उसका दिल बड़ा परेशान था। वह इधर-उधर न जाने क्या ढूंढने लगा। तब तक उसने देखा, उसके गाँव-जवार के सबसे बड़े बुजुर्ग, उसके स्नेही, किरपाराम शुकुल धारो-धार बैठे रो रहे हैं। और उन्हीं के साथ बैठे घूरे साहु भी रो रहे हैं। उन दोनों बुजुर्गों के पास बैठकर बेहुलासिंह ने बच्चों की तरह पूछा, "हे हो बाबा, तनी हमें बताओ, ई अभिमन्यु इस माफिक रो क्यों रहा है?" दोनों बुजुर्ग बेहुलासिंह का मुँह ताकने लगे।

"ई बात तो हमहूँ नाहीं जानित भइया! तू बतावा न, तू न येकर भेद जनबा तो हम का जानब!....बतावा न बेहुल, येकर मतलब?"

बेहुला चुपचाप वहाँ से हटकर फिर अकेले में खड़ा होकर अभि-

मन्यु के विलाप में खो गया। और वह खुद उस अभिमन्यु के साथ उसी के आँसू में रोने लगा। सहसा 'सेमरी बाजार युवक दल' के दो जवान लड़के बेहुलासिंह की बाँह पकड़ उसे एकान्त में ले गये। बोले, "दादू, चोन्हरी मिडवाइफ के घर में इस वक्त मौजूद है। चलो, उसे इसी समय पकड़ लिया जाय।"

बेहुलासिंह युवक दल के साथ सेमरी बाजार की ओर दौड़ा। अपने साथ उसने घूरे साहु को भी ले लिया। मिडवाइफ के स्थान पर पहुँचा, तो वहाँ चारों ओर सन्नाटा। भीतर से घर का दरवाजा बन्द था। बाहर चौकीदार भी नदारद। बेहुला के संकेत से युवक दल के सदस्यों ने मिडवाइफ का घर चारों ओर से घेर लिया। बेहुलासिंह ने बन्द दरवाजे को खटखाया। आवाजें दीं। पर भीतर से कोई उत्तर नहीं। भीतर से रह-रहकर कई लोगों के हँसने और बोलने की आवाजें आ रही थीं। बेहुला की फुजाएँ फड़क उठीं। तब तक देखा, चोन्हरी का बाप बीपत चमार भी अपने दोनों जवान लड़कों के साथ पहुँच गया है। बीपत चमार ने हाथ जोड़कर कहा, "दादू, जावे न पावै चोन्हरी! तू ही धर्म राखो साहेब!"

बेहुलासिंह के दिल में वह गाँव धर्म जैसे दहक उठा। उसने जमकर वह लात मारी बन्द किवाड़ पर कि भीतर की लगी हुई वह कुंडी खट-से टूट गिरी। दरवाजा बड़े ही तेज भड़ाके से खुल गया। दरवाजे के भीतर अन्धकार। उसके आगे के बरामदे में भी अन्धकार। आँगन में जाकर बेहुल को लालटेन की धीमी रोशनी मिली। वहाँ कई लोग पलंग पर बैठे हुए कुछ खा-पी रहे थे।

"कहाँ है चोन्हरी?"

बेहुलासिंह की गरजती हुई आवाज़ सुनकर जैसे उन लोगों को होश हुआ।

"कहाँ है चोन्हरी ?"

पर चोन्हरी वहाँ नहीं दिख रही थी। वह शायद दायीं ओर बरामदे वाले कमरे में थी, जहाँ से कोई आदमी टॉर्च की रोशनी जला कर उसे देखने लगा था। वह चौकीदार था। बेहुला ने उसकी लाठी का आक्रमण अपनी दायीं बाँह पर लिया और सीधे बरामदे वाले कमरे में घुसकर देखा, तो सारे बदन में जैसे आग लग गयी। कमरे में दायें-बायें किनारे दो आदमी खड़े थे, पलंग पर चोन्हरी थी।

दरवाजे पर बेहुलासिंह तीन-चार व्यक्तियों के प्रहार को अकेले रोक रहा था। बीपत चमार और उसके दोनों लड़कों ने चोन्हरी को पलंग से नीचे खींच लिया। उसे आँगन में ले आये।

पर तब तक जैसे एक तूफान शुरू हो गया था। बिजली की तरह यह खबर वहाँ पहुँची जहाँ अभिमन्यु नाटक हो रहा था—'बेहुलासिंह ने अपनी पार्टी के साथ सरकारी मुलाजिम मिडवाइफ के घर पर डाँका डाला !'

क्षण भर में घूरे साहू के घर के सामने सैकड़ों आदमी जमा। विकास मेले के इन्तजाम के सिलिसिले में आये हुए रेमूपुर थाने के दरोगा, हेड कांस्टेबिल, चार सिपाही वहाँ आ गये। हवाई फायर हुए। विकास क्षेत्र सेमरी बाजार के सारे हाकिम-हुक्काम वहाँ फाट पड़े। तीनों डाक्टर क्रोध से लाल। 'सेमरी बाजार युवक दल' के एक-एक सदस्य फौरन बाँध लिये गये।

बी. डी. ओ. की जीप दरोगा और सिपाही को अपने साथ बिठाये हुए उस अंधेरी रात में सेमरी बाजार के सीने पर दौड़ने लगी। फिर वही राघवपुर की धूल भरी डहर। जीप की तेज हेड लाइट सूने खेतों, बाग-अमराई के अँधेरे आँचल को अपनी रोशनी से छूती हुई चली जा रही थी। उस तेज रोशनी के भीतर जो कुछ भी दिखाई पड़ता था, वह

सब कुछ जैसे थर-थर काँपकर रोशनी के बाहर जो घना अँधेरा था, उसमें विलीन हो जाता था। सूने खेतों में बसने वाले हजारों भूत-प्रेत जैसे उस रोशनी की धाराओं में से भाग-भागकर चारों ओर छिप रहे थे।

आगे निचली धरती थी—मटियार। आगे मियाँ का नाला था—धूल-धूसरित। जीप को क्या डर ! नाले से ऊपर चढ़ती हुई जीप की प्रकाश-धार में बिल्कुल अन्तिम सिरे पर पाँच आदमी दिखे, जैसे चार जनों के कन्धे पर कोई लाश ले जायी जा रही हो। राम नाम सत्य ! आगे बेहुलासिंह, बीपत चमार, पीछे-पीछे बीपत के वही दोनों बेटे लौटू और भगेलन। बीच में वही चोन्हरी। वे चुपचाप अँधेरे के सहारे चले जा रहे थे—अँधेरे में डूबे हुए। पीछे से उन पर पड़ती हुई जीप की रोशनी मानो उन्हें छू ही नहीं रही थी। अन्धकार ही भरोसा !

जीप मगर जब बिल्कुल पास आ गयी, तो बेहुलासिंह रुक गया—"सुनो हो, बीपत, यह तो बी. डी. ओ. साहेब की गाड़ी है। लगता है, साहेब कहीं दौरे पर जा रहे हैं।"

जीप आगे बढ़कर रास्ता रोककर खड़ी हो गयी। बेहुलासिंह ने हाथ जोड़कर नमस्ते किया। तब तक जीप से दौड़कर चारों सिपाही और दरोगा बेहुलासिंह पर टूट पड़े। उसे हथकड़ी में बाँधकर जीप में डालने लगे।

"यह क्या है साहेब ?" बेहुलासिंह कुछ नहीं समझ पा रहा था।

दरोगा ने जवाब में बेहुलासिंह को बहुत भद्दी गाली दी।

"डाँका डालकर अब भोला बनने चला है !"

"क्या ?"

"वह भी सरकारी चीजों पर डाँका !"

"क्या कहा ?"

"सिर्फ डाँका ही नहीं, जिन्हकारी (बलात्कार) भी !"

बेहुलासिंह को लिये हुए बी. डी. ओ. की जीप सेमरी बाजार की ओर मुड़ी। एक ओर बी. डी. ओ. और दूसरी ओर पिस्तौल ताने वही दरोगा, बीच में गाय की तरह बेहुला।

दूसरी ओर चारों सिपाही, बड़े कांस्टबिल साहेब, इन पाँचों के के घेरे में बीपत चमार, चोन्हरी और वे दोनों लड़के घिर गये। और वह काफिला पैदल रवाना हुआ। जीप की उड़ायी हुई धूल बड़ी भयानक लग रही थी—जैसे उसमें न जाने कितने भूत-प्रेत उड़ रहे हों। पर उसी धूल के बीच से पुलिस के लोग उन्हें बाजार की ओर ले जा रहे थे।

बड़े कांस्टबिल ने बीपत से कहना शुरू किया। "तुम लोगों से कुछ बातें करनी थीं, इसीलिए हमने जीप छोड़ दी है। और असली मुलजिम तो वह बेहुल था। तुम लोग तो सरकारी गवाह हो। क्यों, ठीक है न !"

क्यों ठीक है न ! यही 'क्यों' और 'ठीक है न' दो बातें करते-करते बहराइच कोनकी कचपचिया तरई पूरब कोन पर चली गयी। एक बार यही बात तो दूसरी बार वे बेंत। बड़ा कांस्टबिल तो हाँफने लगता था। और फिर मार बन्द और वही बात ! 'क्यों ठीक है न !' मियाँ के नाले से सेमरी बाजार के बीच आज न जाने कितना लम्बा फासला हो गया था। आज की रात न जाने कितनी लम्बी हो गयी थी। और आखिरकार जीत पुलिस की ही हुई। सारा प्रश्न सहसा हल हो गया।

थोड़ी सी रात अब भी बाकी थी। चोन्हरी का डाक्टरी मुआइना हुआ। उसका बयान लिया गया। उसके बाप और दोनों भाइयों की गवाही हुई।

और अभी तक दिन नहीं निकला था। चार सिपाही और दरोगा

के बीच हथकड़ी पहने जीप पर बेहुलासिंह बैठा था—मौन, वैरागी-सा। सारे बाजार में मुर्दनी छा गयी थी। कहीं भी कोई जीप के आस-पास नहीं दीख पड़ता था। सेमरी बाजार में 'युवक-दल' के लोगों के अतिरिक्त और लोगों की भी गिरफ्तारी हो रही थी। थाने से और पुलिस बाजार में आ चुकी।

बेहुलासिंह पर दो दफे लगे थे—तीन सौ पंचानबे और तीन सौ छिहत्तर—डाका और बलात्कार।

जीप बस्ती कचहरी के लिए रवाना ही होने को थी। जीप के बाद बस्ती वाली 'बस' से चोन्हरी जाएगी। संग उसके उसका बाप रहेगा, उसके दोनों भाई रहेंगे। सबका मजिस्ट्रेट साहेब के सामने बयान होगा। सब रंगे हाथ पकड़े गये। सारा 'केस' मुकम्मल।

जीप अब खुलने ही वाली थी। तब तक न जाने कहाँ से बेहुलासिंह के गाँव के बुजुर्ग किरपा सुकुल और बाजार के घूरे साहु जीप के पास आये। बेहुला को देखते ही वे दोनों रो पड़े।

पर बेहुला की आँखों में आँसू न थे। वह वैराग्य स्वर में बोला, दादू हो ! सुनो, अब हम जान गये, अभिमन्यु क्यों रोता था। जिसके पिता अर्जुन, मामा कृष्ण, वह अकेला, अबोध अन्याय युद्ध में....।" यह कहते-कहते बेहुला हँस पड़ा। अजीब करुण हँसी !

"मैं अब जान गया अभिमन्यु के रोने का रहस्य।" बेहुला कितना खुश था—जैसे उसे कोई शक्ति मिल गयी हो।

जीप घर्र से छूट गयी। बहुत तेज जाने लगी बस्ती की सड़क की ओर।

सेमरी बाजार के लोग अपने-अपने घरों में से निकल कर रोते हुए किरपा सुकुल और घूरे साहु के चारों ओर खड़े हुए—जैसे श्मशान से अन्तिम क्रिया करके लोग चुपचाप किसी के दरवाजे पर खड़े होते हैं।

हंस राजा हंस रानी

हंसराज तिवारी मारे जोश के बंबई को बमबमबई कहते थे, ऐसा लगता था जैसे बंबई कोई बहुत बड़ा रसगुल्ला हो, जिसका नाम लेते ही उनका मुँह रस से भर गया हो और वह रस बंबई बोलते समय कहीं मुँह से छलक न जाए इसलिए तिवारी महाराज होंठ और जबान संभालते-संभालते बंबई को बमबमबई कह जाते थे।

मटियारा गाँव में सब से ज्यादा बस्ती कुर्मियों की है, फिर चमार और अन्य छोटी जातियाँ, एक घर कायस्थ और एक वही तिवारी जी का घर! गाँव भर का पूज्य, गाँव भर में बड़ा! तिवारी जी तीन भाई हंसराज जी सब से बड़े और अपने पूरे परिवार में सब से ज्यादा जीवनपूर्ण और उदार।

बंबई के कामकाज के नाते तिवारी जी की बड़ी धाक है, सब लोगों को मालूम है कि तिवारी जी का बंबई में कोई बड़ा कारोबार है—शायद दूध का काम काफी अच्छी आमदनी है, तभी तो वह नियमित रूप से पचास रुपये महीने अपने घर बालबच्चों के लिए भेजते हैं और जब वह तीन-चार साल बाद गाँव लौटते हैं तो बिल्कुल राजा की तरह अकबरपुर स्टेशन से ताँगे पर बैठ कर टांडा तहसील तक आते

हैं, वहाँ तीन-चार कुली करते हैं और उनके सिर पर बाक्स, बिस्तर, फल, मिठाई की झविया, बाल्टी और कपड़े का गट्ठर लदवा कर बहुत खरामा-खरामा टांडा से चार मील पश्चिम की तरफ मटियारा की पगगंडी थामे चले आते हैं—मुँह में पान, दाँतों में सोने की बत्तीसी, पैर में पच्चीस रुपये का जूता, लकालक धोती और कुरता, कान में इत्र, बालों में सुगंधित तेल, कुरते में सोने के बटन, कलाई में घड़ी, दोनों हाथों की उंगलियो में अँगूठियाँ और हाथ में नया छाता।

तिवारी जी जब अपने गाँव जवार के पास आते, तभी से लोग दौड़-दौड़ कर उनके पैर छूना शुरू कर देते थे, तिवारी जी हर पैर छूने वाले को खूब मन से आशीष देते थे और साथ ही वह किसी को खैनी-सुरती, किसी को जर्दा, किसी को लौंग सुपारी, कत्था-चूना का दोहरा और किसी-किसी विशेष को अपने पनडब्बे में से दो बीड़े पान।

हंसराज तिवारी को गाँव के लोग तभी मारे प्रेम के हंसराजा कहते थे, मटियारा गाँव के पूरब सिवान में क्रौंच पक्षी का एक जोड़ा इसी तरह दूसरे-तीसरे साल सावन भादों के महीने में आता है, उसे भी गाँव वाले हंस राजा और हंस रानी कहते हैं, जिस साल क्रौंच पक्षी का वह जोड़ा मटियारा गाँव में आता है वह फसल, वह साल गाँव वालों के लिए बहुत शुभ होता है।

इस बार हंसराज तिवारी बंबई से फागुन के महीने में गाँव आए सो बड़ी धूम मटियारा गाँव में मची। हंसराज की पत्नी सुकदेव की माँ भीतर ढोल ले कर बैठ जातीं और औरतों के झुंड के साथ चौताल गातीं—'रतियाँ, सजनी, मोरे श्याम सपनवाँ में आए; और बाहर बरामदे में ढोल ले कर पुरुषों का जत्था ले कर बैठते हंसराज तिवारी औरतों के जवाब में डेढ़तल्ला और झूमर चैती गाते, 'कुंजन बन में बनवारी नयन सर मारे, मैं दधि बेचन जात संग नहिं और कुंवारी मंद-मंद मुस-

कात बाट में मिल्यो मुरारी।'

इस तरह स्त्री पुरुषों में फाग की होड़ संध्या से सुबह तक होती थी, कभी हंसराज उस होड़ में जीतते और कभी उनकी पत्नी।

तिवारी जी के घर के पिछवारे मुँशी रामलाल पटवारी का घर था, दोनों घरों में मुद्दत से प्रेम व्यवहार। जब जमींदारी थी तब मुंशी रामलाल उस गाँव के पटवारी थे पर जब से जमींदारी टूटी, पटवारियों की स्ट्राइक में बेचारे मुंशी रामलाल अपनी पटवारगीरी से हाथ धो बैठे और तब से वह घर पर बेकार बैठे हैं, दस बीघे खेत हैं, लाला मुंशी की खेती! बेचारे की गृहस्थी बड़ी तंगी में थी, हाथ में पैसे नहीं, स्वयं हरकुदार चला नहीं पाते थे। मुंशी रामलाल बहुत उदास और दुखी रहते थे, अब उनकी सब से छोटी लड़की शादी करने लायक हो हो गई थी। पर मुंशी जी के हाथ में तो पैसे ही नहीं थे, बेचारे करें क्या?

उदास घर में बैठे हुक्का पिया करते थे।

होली के दूसरे दिन मुंशी रामलाल की पत्नी हंसराज तिवारी के घर गईं, सुखदेव की माँ का चरण छू कर वह रोने लगीं कि तिवराइन तू अपने तिवारी से कह कि वह अपने संग मेरे मुंशी को भी बंबई ले जाएँ, अपने दूध के कामकाज में वह मेरे मुंशी को हिसाब-किताब लिखने में रख लें।

तिवराइन मुंशी की पत्नी की सखी थीं, सो सखी की यह बात तिवराइन की समझ में आ गई, उन्होंने झट मुंशियाइन सखी को हाँ कह दिया और उधर मुंशियाइन अपने पति को बंबई भेजने के लिए तैयारी में लग गईं।

शाम को तिवराइन पति से बोलीं, "दूध के काम-काज में हिसाब-किताब करने के लिए अपने रामलाल मुंशी को बंबई जरूर ले जाओ, बड़ी तंगी है उन पर, और मेरी सखी ने मुझसे पहली बार यह बात

करने को कही है।"

हंसराज तिवारी पत्नी का यह आग्रह सुन कर सामने से चुपचाप हट गए, तिवराइन ने रात को फिर कहा, "हे हो! तुम बोलते क्यों नहीं? मैंने तो अपनी सखी से हामी भी भर ली है कि उन्हें यह बंबई अपने साथ ले जाएँगे और अपने दूध के काम काज में मुंशीगीरी की नौकरी दे देंगे।" हंसराज तिवारी अपनी पत्नी का मुँह देखते रह गए, "तिवराइन, तुमने यह क्या किया? बंबई में वहाँ मेरा मुनीम तो है ही, उसे कैसे निकालूँगा और मुंशी जी को यहाँ से मैं बंबई कैसे ले चलूँगा? बंबई की नौकरी खिलवाड़ थोड़े ही है!"

"तुम तो वहाँ हो ही! कोई काम मुंशी जी को दे देना या दिला देना।"

"हुँ! वहाँ हिंदी उर्दू से थोड़े ही काम-काज होता है, वहाँ तो अंगरेजी चलती है, अंगरेजी!"

"तुम वहाँ हो तो सब चल जाएगा!"

"यह कैसे होगा, तिवराइन! तुम कुछ भी नहीं समझतीं। बंबई बमबमबई है। वहाँ ऐसे काम नहीं चलते।"

तिवराइन झट से बोलीं, "हे हो! जहाँ तुम इतने वर्षों से हो वहाँ तुम मुंशी जी को एक नौकरी नहीं दिला सकते? कैसे हो तुम?"

तिवारी बोले, "बमबमबई में ऐसे ही नौकरी नहीं मिलती! बड़े-बी० ए०, एम० ए० वहाँ मारे मारे फिरते हैं।"

"फिर वहाँ काम काज कैसे मिलता है?"

"वहाँ ऐसे ही नौकरी नहीं मिलती। वहाँ एक एंप्लायमेंट इक्सचेंज है, वही नौकरी दिलाती है।

तिवराइन झुँझला कर बोलीं, "मैं कुछ नहीं जानतीं, मैंने मुंशिआइन से हाँ कह दिया है सो तुम्हें मुंशी को बंबई ले ही जाना है।

चाहे अपने दूध के कारोबार में उन्हें रखो, चाहे वहाँ कोई और नौकरी दिलाओ।"

हंसराज तिवारी अपनी पत्नी के सामने हार गए। वह बेचारे तिवराइन को क्या और कैसे समझाते, दूसरे प्रश्न अपने मन का भी था। यों तिवारी जी आज तक अपने गाँव-पड़ोस के किसी भी आदमी को अपने संग बम्बई नहीं ले गए थे। गाँव में कितने जवान लड़के और पुरुष बंबई में नौकरी के लिए तिवारी जी को घेरते पर तिवारी जी ने सदा उन्हें यह कह कर काट दिया कि अरे, वहाँ बमबमबई, वहाँ न खाने की जगह, न सोने की। ऊपर से बंबई के दादा और गुंडे राह चलते छुरी भोंक दें। और वहाँ तो हिन्दी बोली ही नहीं जाती। गुजराती, मराठी और वही अंगरेजी।

तिवारी जी ने गुजराती, मराठी और कुछ अंगरेजी के शब्द याद कर लिए थे। वही बोल कर वह गाँव वालों को भयभीत कर देते थे। तिवारी जी गाँव वालों से यह भी कहते कि वहाँ बमबमबई में तो हर चीज की पगड़ी। ऊपर से चारों ओर घूस। पाकेटमारों को घूस दो तो वे तुम्हें छोड़े देंगे। दादा लोगों को शराब पिलाओ तो वे तुम्हें माफ करते रहेंगे। पुलिस वालों को डाली लगाओ तो वे तुम्हें रहने देंगे वरना दफा एक सौ सात, चार सौ बीस वगैरह में तुम्हें फाँस लेंगे।

इस तरह तिवारी जी की बातें सुन कर गाँव वाले थर्रा जाते और बंबई जाने के लिए कान पकड़ लेते। मगर और इस बार अपनी इस तिवराइन को कौन समझाए और उस मुंशी और मुंशियाइन को! बेचारे हंसराज तिवारी की कुछ न चली और मुंशी रामलाल तिवारी के साथ-साथ वह बंबई जाने के लिए तैयार हो गए।

बंबई में अपनी खोली में ला कर हंसराज तिवारी ने मुंशी रामलाल से कहा, "देखो, मुंशी जी, अकेले खोली से बाहर न निकलना,

यह बमबमबई है, हाँ, नहीं तो कोई चाकू छुरी मार दे या फोरट्वंटी कर दे तो मैं नहीं जानता। अब मटियारा गाँव की बातें यहाँ भूल जाओ। यहाँ आदमी का अर्थ बदल जाता है।"

मुंशी जी तिवारी जी की बात कतई नहीं समझ सके। तिवारी जी सुबह ही सुबह अपने दूध के काम पर चले गए। मुंशी जी को खूब समझा बुझा और सब कुछ सहेज गए जैसे पचास साल के मुंशी पाँच साल के नादान बच्चे हों।

मुंशी जी ने उस तंग कोठरी में देखा—मिट्टी के एक टूटे बरतन में तुलसी का एक बिरवा लगा है जिस पर दूब, अक्षत डाला हुआ है। दीवार पर हनुमान जी का चित्र टंगा है, जिस पर अभी ताजा-ताजा सिंदूर लगा है, खूंटी पर कई जोड़ी जनेऊ टंगे हैं, रुद्राक्ष की माला टंगी है, ताख पर भागवत की पोथी और उस पर रामायण का गुटका रखा है, मुंशी ने सोचा, हंसराज तिवारी अपने शुद्ध ब्राह्मणत्व की वही मर्यादा यहाँ भी निभाता है—खूब है, वाह!

तिवारी जी सुबह चार ही बजे स्नान-ध्यान, 'पूजा पाठ करने के बाद मुंशी जी को सावधान करके निकल जाते और दस बजे तक लौट आते, फिर भोजन करके जो खाट पर गिरते तो संध्या छः बजे तक जैसे उन्हें सुध-बुध न रहती। बेचारे मुंशी जी खोली का दरवाजा थोड़ा सा खोल कर टुकुर-टुकुर बाहर निहारते जैसे कबूतर के घोंसले में बिना पंख का कबूतर का नन्हा सा बच्चा अपने आस-पास के अपरिचित संसार को देखता है। बेचारे मुंशी जी कई बार हंसराज तिवारी को जगाने के लिए तरह-तरह से पुकारते, "पंडित जी, उठो खैनी तैयार है।" और मुंशी जी खूब मल कर खैनी बनाते और तिवारी जी की नाक के पास उसे ले जा कर पीटते, तब भी तिवारी जी की आँख न खुलती। तिवारी जी जोर-जोर से पुकारते तब भी उनकी आँख कभी

छः के पहले नहीं खुलती। बेचारे मुंशी जी सारा दिन उसी खोली में बैठे और खड़े बाहर निहारते-निहारते थक जाते।

एक दिन मुंशीजी ने तिवारी जी से कहा, "पंडित जी, तुम इतना कैसे सोते हो? मुझे तो यहाँ दिन में नींद ही नहीं आती।"

तिवारी जी ने कहा, "अरे, यह बमबमबई है! यहाँ जो इतना दिन को नहीं सोएगा वह बीमार पड़ जाएगा।"

"पर दिन भर तो यहाँ लोग काम करते हैं। सारा दिन आदमियों, कुली-मजदूरों से तो यह सड़क भरी रहती है।"

"अरे मुंशी जी, ये लोग यहीं के बासिंदे हैं। इनके लिए दिन में सोना जरूरी है। यह दिन में सोने की बात बमबमबई में बाहर से आने वाले व्यक्तियों के लिए है।"

मुंशी जी को तिवारी जी की एक भी बात समझ में न आती! और आज एक हफ्ते से भी ऊपर हो गया उसी खोली में मुंशी जी बैठे-बैठे बन्द! ब्राह्मण का अन्न इस तरह खाना मुंशी जी को खलने लगा।

मुंशी जी ने रात को हंसराज तिवारी से कहा, "पंडित जी, मेरा कहीं काम-काज लगा दो, अब मुझे बहुत हो गया यहाँ बैठे-बैठे खाते हुए।"

तिवारी जी ने कहा, "पहले दिन में सोने की आदत डाल लो तब नौकरी करना!"

"पर तब नौकरी किस समय करूँगा!"

"वह मैं बताऊँगा न!"

"पर मुझे तो दिन में नींद आती ही नहीं। पंडित जी, तुम भी तो जब गाँव जाते हो तब वहाँ दिन में कहाँ सोते हो?"

"यही तो कठिनाई है, मुंशी जी, तभी तो मैं उधर के लोगों को

बमबमबई आने के लिए मने करता हूँ पर तुम लोग माने ही नहीं।"

बेचारे मुंशी जी हंसराज तिवारी का मुँह देखते रह गए। तिवारी-जी ने उन्हें एक सलाह दी, "देखो, मुंशी जी, तुम मेरी एक सलाह मानो, यहाँ से मैं रुपए का एक माल तुम्हारे लिए खरीद देता हूँ—यही बंडी, मोजा, रूमाल, साबुन, पाउडर, जूड़ाकाँटा सारा—बिसाता सामान। यही सौ रुपए का माल तुम टाँडा तहसील के बाजार में पाँच सौ रुपए में बेच लोगे। पहले यह करके देखो, आगे मैं यही सिलसिला और बढ़ा दूँगा। मैं भी आगे दूध का कारोबार नहीं करना चाहता। बड़ी बेईमानी बढ़ती जा रही है। पाउडर का दूध! पानी मिला दूध! अपना तो ब्राह्मण धर्म, झूठ और अधर्म का काम नहीं करते बनता। आखिर चार दिन की जिंदगानी, इसमें क्या अधर्म करना!"

मुंशी जी बड़े पसोपेश में पड़े। बम्बई नौकरी करने वह आए थे जिसके लिए उन्होंने चालीस रुपए टाँडे के राममुनीम से किराए भाड़े के लिए कर्ज लिया था। यह व्यापार और रोजगार मुंशी जो के बूते से परे की बात थी।

एक रात मुंशी जी ने कहा, "पंडित जी, एक दिन मुझे भी अपने दूध के काम-काज पर ले चलते। मैं भी वह देख लेता, जी!"

"उसमें देखना क्या है, मुंशी जी! मेरे यहाँ कोई गाय, भैंसें थोड़े ही हैं, अरे, सुबह-शाम देहात से लोग दूध ले आते हैं। मैं उन्हें एक जगह खरीद लेता हूँ, फिर शहर में सप्लाई कर देता हूँ।"

"लोग सीधे शहर वालों को क्यों नहीं बेच देते?"

"सीधे कैसे बेच देंगे? मैंने ठीका जो ले रखा है। यह बमबमबई है, मुंशी जी, तुम क्या जानो, यहाँ के कानून और तौरतरीके!"

यह बात मुंशी जी की समझ में आ गई। और उनके मन में यह इच्छा बहुत तीव्र हुई कि वह तिवारी जी के साथ अगले दिन उनके

दूध के काम पर जाएँ।

पर हंसराज तिवारी ने मुंशी जी से कहा, "शहर में आजकल बहुत दंगा बढ़ गया है, अभी तुम्हारा वहाँ जाना ठीक नहीं है। जब उधर शहर में शांति हो जाएगी तब मैं तुम्हें जरूर ले चलूँगा।"

उस रात मुंशी जी को नींद न आई। वह ऐसी बम्बई क्यों ले आए, इसके लिए बेहद चिंतित थे।

सुबह चार बजे हंसराज तिवारी लँगोट के ऊपर खाकी जाँघिया फिर अपनी सफेद धोती और उस पर कुरता पहन कर खोली से बाहर निकले। मुंशीजी झटपट खोली के दरवाजे में ताला लगा कर नंगे पाँव तिवारी जी के पीछे-पीछे छिप कर चल पड़े, चलते गए, चलते गए। करीब एक घंटे का समय बीत गया। एक चाय की दुकान के पीछे चार लोग तीन ठेले लिए खड़े थे। मुंशी जी ने दूर खड़े होकर देखा—हंसराज तिवारी ने अपना जूता, कुरता और सफेद धोती वहीं उतार दिए। कंधे का जनेऊ उन्होंने वहीं दुकान के एक बाँस पर लटका दिया और वही खाकी नेकर और बंडी पहने नंगे पाँव ठेला लिए हुए तिवारी जी आगे बढ़े। एक बाजार में पहुँच कर उन्होंने तीनों ठेलों पर बर्फ की बड़ी-बड़ी सिल्लियाँ लादीं और समुद्र की ओर वे तीनों ठेले चलने लगे। तिवारी जी का ठेला शेष दोनों ठेलों से बड़ा था और उस पर दूनी बर्फ लदी हुई थी। तिवारी जी ठेले के आगे बैल की तरह लगे हुए बड़ी तेजी से अपना ठेला समुद्र की ओर खींचते चले जा रहे थे—पसीने से लथपथ बैल की तरह बेतरह खींचते हुए।

डेढ़ घंटे की मेहनत से तिवारी जी का वह ठेला समुद्र के किनारे पहुँचा। वहाँ नारियल के पेड़ के पीछे छिपे हुए मुंशी जी ने क्या

देखा कि मछुओं ने बालू पर कई मन मछलियाँ मार कर ढेर कर रखी हैं। तिवारी जी लोहे के काँटे और हथौड़े से बर्फ की सिल्लियाँ तोड़-तोड़ कर बड़े-बड़े झाबों और पेटारों में बर्फ रखते जा रहे हैं और उनमें ऊपर से मछलियाँ उठा-उठा कर भर रहे हैं। मुंशी जी यह सारा दृश्य देख कर घबरा गए।

बर्फ में भर-भर कर वे सारी मछलियाँ उन्हीं पेटारों में बन्द की गई। वह सब फिर उन्हीं ठेलों पर लादा गया और तिवारी जी का वह ठेला फिर उसी बाजार की ओर मुड़ा। मुंशी जी नारियल का पेड़ थामे वहीं जड़वन खड़े थे। ठेले आगे बढ़ गए और समुद्री मछली की बदबू से सारा रास्ता भर गया।

करीब साढ़े दस बजे जब हंसराज तिवारी अपनी खोली पर आए तो खोली के दरवाजे पर उन्होंने देखा कि वहाँ ताला लटक रहा है। तिवारी जी घबराए हुए मुंशी जी को इधर-उधर आवाज देने लगे। तब तक उन्होंने देखा कि मुंशी रामलाल जी सामने चाय की दुकान पर बैठे चाय पी रहे हैं।

"हरे हरे! यह तुम क्या करते हो, मुंशी जी, इस तरह यहाँ चाय नहीं पीनी चाहिए! यह बमबमबई है, जनाब!"

मुंशी जी सामने खड़े हंसराज तिवारी को निहारते रह गए—पैर में वही पच्चीस रुपए के जूते, वही लकलकी धोती, कीमती कुरता, कलाई में घड़ी, सिर के बाल करीने से कढ़े हुए, मुँह में पान, होठों पर मुसकान। मुंशी जी को जैसे अपनी आँख और अक्ल पर विश्वास नहीं हो रहा था कि यह सामने खड़ी तिवारी जी मूर्ति वही सुबह के ठेले वाले की है।

खोली में आकर मुंशी जी ने कहा, "तिवारी जी, मुझे आज गाड़ी पर बिठा दो, मैं अब अपने मुल्क जाऊँगा।"

"क्यों, ऐसी क्या बात हो गई?"

"कुछ नहीं, मैं यहाँ दिन में सो नहीं सकता!"

"हाँ, मुश्किल तो क्या, आदत की बात जरूर है! अच्छा, तो वही बिसाते का ही काम-धंधा ले जाकर टाँडे में कर लो।"

"मुझसे यह भी नहीं होगा, तिवारी जी! मैं तो बस अपने गाँव लौट जाऊँगा।"

"अच्छा चलो मुंशी जी, आज तुम्हें बम्बई घुमा लाऊँ!"

"नहीं, तिवारी जी, मेरा मन अब बिल्कुल उचट गया यहाँ से। मुझे तो अब गाड़ी पर बिठा दो।"

"किराया खर्चा?"

"वह सब हो जाएगा। बस, मुझे तुम गाड़ी में बिठा दो!"

उसी रात मुंशी रामलाल गाड़ी में बैठकर तीसरे दिन अपने अकबरपुर स्टेशन पर उतर गये। मटियारा गाँव में संध्या समय जब मुंशी जी वापस आ गए तो लोगों को बड़ा ही आश्चर्य हुआ, पर मुंशी जी ने किसी से भी कुछ न कहा, अपनी पत्नी से भी नहीं। सिर्फ यही कहा कि बम्बई में पहुँचते ही मेरी तबीयत खराब हो गई।

पर एक दिन उन्होंने हंसराज की पत्नी, शुकदेव की माँ से सही बात बता दी। तिवराइन ने कहा, "असंभव! मुझे इसकी परतीत नहीं, मुंशी जी! भला ऐसा कभी हो सकता है! तिवारी जी और ऐसा! कभी नहीं! कभी नहीं!"

मुंशी जी खामोश रह गए पर तिवराइन के मन में कुछ तड़पने लगा। वह जितना ही ऊपर से आश्वस्त दीखतीं, भीतर ही भीतर उतनी ही चिंतित होने लगीं। मुंशी जी भला ऐसा झूठ क्यों बोलेंगे?

तिवराइन ने तिवारी को बम्बई खत लिखा—एक नहीं लगातार

तीन-चार खत पर किसी का उत्तर न आया। तिवराइन की भूख और नींद हराम।

एक दिन तिवराइन ने मुंशी जी से कहा, "मुंशी जी, मैं सारा खर्चा आपको देती हूँ, कृपा कर मुझे तिवारी जी के पास ले चलो!"

मुंशी जी घबरा गए। बम्बई न जाने के लिए वह तिवराइन से तरह-तरह के बहाने बनाने लगे। एक दिन उन्होंने यहाँ तक कह दिया, "मैंने, तिवराइन, जो कुछ तुमसे तिवारी से बारे में कहा है, वह सच-मुच झूठ है। तिवारी जी सच बम्बई में दूध का ही कारोबार करते हैं।"

तिवराइन का स्त्री हृदय और सहज मन में चुभा हुआ वह काँटा, उसकी टीस उतनी ही बढ़ती जा रही थी। तिवारी जी ने मेरी चिट्ठियों का इस बार उत्तर क्यों नहीं दिया?

"मुंशी जी, आप साथ नहीं चलोगे तो मैं अकेली बम्बई जा रही हूँ," संध्या समय तिवराइन ने मुंशी जी से साफ कह दिया।

सावन का महीना। चारों ओर हरियाली और ताल-तलैया पानी से भरे हुए। कोई दिन तो नहीं जाता, जिस दिन पानी न बरसे!

"तुम ऐसे में कहाँ जाओगी तिवराइन?"

"डूबती-उतराती मैं कल भोर में ही नैहर जाने के बहाने चली जाऊँगी।"

उस रात खूब पानी बरसा। आधी रात के समय किसी ने तिवराइन का दरवाजा खटखटाया।

"कौन?"

"मैं हंसराज!"

इस समय? इस तरह रात में? ऐसे दुर्दिन में? तिवराइन हाथ में चिराग लिए बाहर दरवाजे पर आई। दरवाजा खोल कर देखा तो परतीत न हुआ कि सामने वही तिवारी जी खड़े हैं—वह पहनावा...

वह मुख।

नंगे पैर, नीचे जाँघिया, ऊपर बनियान, हाथ में एक बक्सा और नीचे से ऊपर तक सराबोर!

"तिवारी जी!" जैसे तिवराइन के मुख से सहसा एक आह निकली?

"हाँ, तिवराइन मैं ही हूँ। मैंने सोचा, तुम्हारे खतों के जवाब में मैं ही हाजिर हो जाऊँ!"

"तिवारी जी!"

"मैं तिवारीजी नहीं हूँ, तिवराइन! मैं सचमुच बम्बई में ठेला वाला मजदूर हूँ। मैं कब तक, कितना झूठ बोलूँगा। बम्बई में तो न कोई ब्राह्मण है, न कोई शूद्र। सब एक जात मजदूर हैं। पर मैं क्या हूँ तिवराइन?"

तिवराइन दरवाजा थामें खड़ी रो रही थीं।

"अरे! रोती क्यों हो, तिवराइन? देखो न, अब तो मैं झूठ थोड़े ही हूँ।

तिवराइन ने बढ़ कर तिवारी की बाँह पकड़ ली, "बोलो नहीं, अन्दर चलो!"

भीतर तिवराइन ने कहा, "मेरी कसम, तुमने किसी से भी यह कहा।"

"मैं अब भी झूठ बोलूँ, तिवराइन? बोलो, झूठ अच्छा है या काम?"

"पर अपनी मानमर्यादा? अपनी यह इज्जत?"

तिवारी जी का उत्तर सुने बिना ही तिवराइन अपने कमरे से बाहर निकल आईं। आँगन में वर्षा थम गई थी। खिड़की खोल कर तिवराइन दौड़ी हुई मुंशीजी के घर गईं। मुंशी जी बाहर बरामदे में ही

सो रहे थे। मुंशी जी जग कर उठ बैठे! सामने वही तिवराइन! मुंशी जी तिवराइन को देखते रह गए। तिवराइन ने अपने गले का कंठहार उतार कर मुंशी जी के हाथ में रख दिया, "मुंशी जी, तिवारी-जी की बात आप कभी किसी से न कहिएगा! तिवारी जी बम्बई से अभी आए हैं।" यह कह कर तिवराइन तीर की तरह अपनी खिड़की की ओर भाग गईं।

मुंशी जी तिवारी जी के दरवाजे पर जाकर बैठ गए—सुबह की प्रतीक्षा में। उनके हाथ में तिवराइन का कंठहार झूल रहा था। उसी समय पूरब के सिवान में वही क्रौंच दम्पति, जिसे मटियारा गाँव वाले हँस राजा और हंस रानी कहते थे, एक साथ बोल उठे—क्रों....क्रों.... क्रों....

मुंशी जी को लगा जैसे वे पक्षी सवाल कर रहे हों—क्यों.... क्यों....क्यों?

सुबह हुई। तिवारी जी घर में से बाहर निकले। मुंशी जी ने दौड़ कर उनके चरण छू लिए और तिवराइन का वह कंठहार उनकी हथेली में रख दिया। तिवारी ने मुंशी जी को अपने गले से लगाते हुए कहा, "अब बमबमबई चलेंगे, मुंशी जी! इस गाँव में जितने लोग बेकार बैठे हैं, सब को साथ ले चलेंगे, हाँ!"

मुंशी जी तिवारी का मुँह देखने लगे और उनके दिल दिमाग में हंस राजा और हंस रानी की बोल गूँज उठी—क्रों....क्रों....क्रों?

थाना बेलूरगंज

जहाँ राजा की बगिया समाप्त होती है, बेलूरगंज थाने की आली-शान बिल्डिंग दिखायी देने लगती है। एक ओर है वही थानेदार साहब का क्वार्टर, दीवान खाना, बारहदरी—सब सफेदी में पुता हुआ—चमचमा। दूसरी ओर है थाने की बिल्डिंग, गाढ़े कत्थई रंग की, जिसके चारों ओर ऊँची मजबूत चहारदीवारी खिंची हुई है। बीच में है वही पाकड़ का छतनार पेड़। जिस पर अब बारहों महीने बगुल पक्षियों का बसेरा रहता है। जिनके नाते अब इस पाकड़ के नीचे बैठना असम्भव हो गया है। सैकड़ों की तादाद में ये धवल रंग के बगुल पक्षी, जितना अधिक बोलते हैं, उससे भी ज्यादा ये पाकड़ के नीचे बीट करते हैं।

थाने के बगल से ही शहीद रोड पास होती है, जो दो मील की दूरी पर आगे ग्रैण्ड ट्रंक रोड को मिलती है।

यह शहीद रोड तो आजादी के बाद बनी है—पहले यह कच्चा रास्ता था—जुलाई-अगस्त दो महीने गांठ भर पानी में डूबा हुआ। उन्नीस सौ बयालिस में ग्रैण्ड ट्रंक रोड से आगे इधर जो अंग्रेज सिपाही बेलूरगंज इलाके का दमन करने आये थे, वे तब इसी कच्चे रास्ते से

गये थे। गाँव के गाँवों में एक तरफ से आग लगा कर। सैकड़ों आदमियों को बन्दूक से भूनकर। फुंके, लुटे और विध्वंस हुए बेलूरगंज थाने की बिल्डिंग को फिर से इतनी शानदार बिल्डिंग बनवा कर।

थाने के पास वाले चौराहे पर लंगड़भूज की गिमटीनुमा एक दूकान है—साबुन, तेल, तम्बाकू, पान, बीड़ी, भूजा सतुआ, गुड़, गट्टा, बतासा और मूँगफली वगैरह की दूकान। अब वह इधर सुबह-शाम चाय बिस्कुट भी बेचने लगा है—वही लंगड़ भूज बताता है बेलूरगंज थाने की वह दशा। अगस्त उन्नीस सौ बयालिस में बेलूरगंज इलाके के लोग महात्मा गान्धी की जै-जैकार बोलते हुए इस थाने पर चढ़ आये थे। विलियम दरोगा को मारकर उसकी लाश हाथी पर लादकर चारों ओर जलूस निकाला था। थाने को फूँक दिया था और तीन महीने इस थाने पर उन सुराजियों का शासन चला था।

उसी समय ये बगुल पक्षी सैकड़ों की तादाद में इस पाकड़ के वृक्ष पर न जाने कहाँ से आये थे और तबसे यहीं उनका बसेरा चल रहा है। यह वही लंगड़ भूज बताता है।

नये थानेदार हरिमाधव सिंह ने अब यहाँ आते ही जो पहला काम किया, वह यही कि उसने इन बगुलों पर तीन राउण्ड फायर किये। ढेर के ढेर बगुले मरे, घायल हुए, उनके पंख सेमल की रुई की तरह पाकड़ के पेड़ से उड़े और इस तरह से बगुलों का बीस बरसों का वह बसेरा उसी दिन यहाँ से खत्म हुआ।

इस घटना से बेलूरगंज इलाके की जनता चौंक उठी। और वह इस बात की चर्चा करने लगी कि नया थानेदार निश्चय ही इस बदनाम थाने को दुरुस्त करने आया है।

बदनाम थाना बेलूरगंज!

यह बदनाम कैफियत सरकार के कागजों में लिख उठी है। सो

बदनामी के इसी कलंक को धोने यह हरिमाधव सिंह यहाँ आया है। बी. ए., एल-एल. बी. पास है, यह नवयुवक थानेदार। खास लखनऊ शहर का रहने वाला अविवाहित पुरुष। हाँ, यह थाना आजादी के बाद तभी से तो बिगड़ा ही है, जब से जिले का वह पुलिस कप्तान डेविड साहब यहाँ से रिटायर्ड हुआ है।

लंगड़ भूज बताता है कि जबसे पन्द्रह अगस्त, छब्बीस जनवरी को थाने की बिल्डिंग पर हमारा तिरंगा झण्डा लहराने लगा है, तब से पाकड़ के पेड़ पर बगुलों की तादाद में दूने-चौगुने का फर्क बढ़ता गया है। चाँव-चाँव, कें-कें, पिच-पिच! गन्दे, मनहूस, अपावन, जिस पेड़ पर इनका बसेरा हो, वह पेड़ ही सूख जाय।

तो साल के साल इस पाकड़ के पेड़ पर जैसे-जैसे बगुलों की संख्या बढ़ती रही, वैसे-वैसे यहाँ से एक साल के भीतर ही थानेदारों का तबादला होता रहा। तब से दो थानेदारों का तो यहाँ कत्ल हुआ। एक पुलिस दीवान मारा गया। तीन बार कांस्टेबिलों के हाथ काटे गये। अजब इतिहास इस थाने का। जो थानेदार यहाँ आया नहीं कि वह बेचारा बस, गया यहाँ से। कोई मरकर, कोई लुटकर, कोई पिटकर, कोई लाइन हाजिर होकर, तो कोई मुअत्तल होकर। पिछले थानेदार पर तो सरकार पुलिस एक्ट के अन्तर्गत दफा सात और दफा उन्तीस के मुकदमे चला रही है और वह थानेदार जेल में है। जुलुम छिपाने और कायरता के अभियोग में। गजब है!

पिछले साल भर तक बेलूरगंज में कोई थानेदार ही नहीं आया। ठीक भी है—कौन आये यहाँ अपनी जान जोखिम में डालने। बिगड़ा हुआ इलाका। मन बढ़े लोग, अपराधी मनोवृत्ति की जनता! केवल अपनी अधम शक्ति का खेल दिखाने वाले यहाँ के प्रधान पुरुष।

पर ताज्जुब है, इस हरिमाधव सिंह थानेदार ने खुद अपना नाम

दिया इस बेलूरगंज थाने के लिए ! और थाने में आते ही सबसे पहले इसने इन्हीं बगुलों पर ही फायर किये। बगुले उड़े। चीखे चिल्लाये। पूरे इलाके भर में उड़े। उड़ते रहे, उड़ते रहे।

सबसे पहले वे विक्रमपुर के इलाके में उड़े। राजा साहब सुविक्रमपुर की कोर्ट के सामने अमरूद की बगिया में उन्होंने रात भर का बसेरा किया। दूसरे दिन वे कुंवर गाँव के आकाश में उड़े और तीसरे दिन वे सहसरामपुर में गये, फिर न जाने कहाँ गायब !

थाने के पेशेवर चापलूस, गवाह, मुखबिर, एजेण्ट हरिमाधव को सलाम करने आये, पर उसने दूर से ही उन्हें भगा दिये। थाने के दीवन साहब—चीफ बाबू अपने नये हाकिम को अपने तजुर्बे सूझबूझ के आधार पर कुछ सलाह-मशविरा देना चाहते हैं, पर वह उसके लिए कोई मौका ही नहीं दे रहा है। थाने के बारहों कांस्टेबिल, इलाके के पैंतीसों चौकीदार साहब को इलाके के असली बदमाशों की लिस्ट देना चाहते हैं, पर हरिमाधव है कि किसी से जबान ही नहीं खोलता। बस, थाने का रजिस्टर नम्बर आठ और वह रजिस्टर नम्बर चार खोले हुए दिन-रात उसी के अध्ययन में ही लगा है। हर गाँव की कैफियत, वहाँ के लोग अमीर गरीब, सजायाफ्ता हिस्ट्रीशीटर, अपराधी, बदमाश—सबको अपनी डायरी में दर्ज करता चल रहा है। और एक दिन सब के पते, ठिकाने और इलाके का नक्शा लिये हुए चुपचाप अपने घोड़े पर बैठकर वह थाने के इलाके में चल पड़ता है।

यह है सहसरामपुर का इलाका। ब्राह्मण, भूमिहार और कुर्मियों का क्षेत्र। धनी इलाका। उर्वरा धरती ! यहाँ साल भर में कम से कम तीन कतल, इससे दूनी फौजदारी और इससे भी ज्यादा आर्म्सचेक के केस होते हैं।

और यह है दो कोस में कुँअर गाँव का क्षेत्र—गौतम ठाकुरों का

इलाका। बलुही, पीली धरती। जौ, धान, कोदो, मेड़ुआ, सरसों, मकई और महुए का देश। घर-घर यहाँ शराब बनती है और मेड़ुआ-महुए का लाटा खाया जाता है। भावुक, क्रोधी रक्त के लोग। यहीं के लोगों ने सन् बयालिस में बेलूरगंज का वह महाकाण्ड किया था। यहीं के लोग, यहीं के घर अंग्रेजों के उस दमन के शिकार हुए थे। यहीं के लोगों ने आजादी के बाद उन थानेदारों को मारा है। सबसे ज्यादा हिस्ट्रीशीटर यहीं हैं। हट्टे-कट्टे कसरती जवान, पहलवान जैसी आकृति। आकर्षक गठन, चमकती हुई आँखें। औरतें तो गजबकी हैं ! ऊँचे कद की भूरपूर देहवाली। गेहुआँ वर्ण, बड़ी-बड़ी कजरारी आँखें। जिससे आँख मिला लें तो उसे नशा हो जाय। थर-थर काँपने लगे वह। गजब रे गजब !

हरिमाधव अपने मुस्की घोड़े पर बैठा हुआ कुँअर गाँव के टीले से चारों ओर देख रहा है। लोग उसके आस-पास से गुजर रहे हैं। पर कोई उसे हाथ उठाकर सलाम नहीं कर रहा है। सबकी आँखों में जैसे क्रोध और शान का नशा है। घोड़ा बार-बार हिंहिया रहा है और बड़ी तेजी से टीले की जमीन को अपने अगले खुरों से खोद रहा है। जैसे वह अपने मालिक को यह दिखना चाह रहा हो कि यही वह टीला है जिसे अंग्रेज कलक्टर ने सन् बयालिस के दमन में अपनी आज्ञा से अपने सामने ही बनवाया था। घोड़ा बार-बार अपने पिछले पैरों पर खड़ा हो-हो जा रहा है। मालिक ने उसकी लगाम कस रखी है—पर वह बोल रहा है—मालिक चलो अब यहाँ से। अंधेरा हुआ नहीं कि कुशल नहीं। दिन डूबने के पहले ही इस कुँअर गाँव को छोड़ दो साहब ! बड़े ही असभ्य-गँवार लोग हैं ये ! विवेक हीन....।

सुविक्रमपुर यहाँ से पाँच मील है—जंगली रास्ता, बीच में गंगा का कछार !

हरिमाधव ने अपने अशान्त-उतावले घोड़े को पश्चिम की ओर मोड़ दिया।

वह राँका जमैइतापुर कहाँ है ?

यहाँ से डेढ़ कोस पश्चिम। चमार और पासियों की बस्ती। अँधेरा होते-होते हरिमाधव का घोड़ा इसी इलाके में पहुँच गया। गरीब दुर्भिक्षों के गाँव। खेतहीन लोग। यहाँ जितने खेत हैं उतनी उर्वरा विस्तृत भूमि, वह सब कुँअर गांव के लोगों की है। वे लोग मालिक—ये लोग खेतहीन किसान-मजदूर। चारों ओर छप्पर और फूस के कच्चे मकान जगह-जगह खंडहर। केवल एक कुरिया रखी हुई। थाने के इलाके में सबसे ज्यादा यहीं के लोग जेलयाफ्ता हैं। अपराध ? दफा एक सौ नौ, आवारा लोग दफा एक सौ दस, दुश्चरित झगड़ालू लोग। दफा तीन सौ उन्नयासी, चोर उचक्कू लोग और दफा साठ, आबकारी धारा के अपराधी।

यहीं तीन घण्टे रात बीत गयी। यहाँ से पक्के तीन कोस है बेलूर-गंज का थाना। हरिमाधव का घोड़ा दुलकी चाल से आगे बढ़ रहा था। सहसा हरिमाधव ने घोड़े की रास खींच ली। कहीं से सुर संगीत उमड़ रहा था—अजब आकर्षक, मन्त्र मुग्ध करने वाला संगीत। जैसे फागुन की रात में पूर्णमासी के चाँद की गन्ध फैली हो। जैसे कोई रासलीला रच रहा हो। मृदंग, मंजीर और वह मीड़ ताल वह मईना ! शरद ऋतु में होरी !

मति मारै दृगन की चोट रसिया
होरी में मेरे लगि जायगी।
अब की चोट बचाइ गयी हूँ
करि घूंघट की ओट रसिया
मति मारै दृगन की चोट रसिया....

दायीं ओर बिहारी जी के मन्दिर की ओट में चुपचाप खड़ा हुआ हरिमाधव मन्त्र मुग्ध देख रहा है—वैष्णव साधुओं का झुण्ड बैठा हुआ है। बीच में पीली साड़ी पहने हुए एक युवती बैठी गा रही है। उसके केश खुले हैं। गोरी सुन्दर कलाइयों में सोने की चूड़ियाँ हैं। आँखें मूँदी हुई हैं। लालटेन की रोशनी उसके दायें गाल पर सीधी पड़ रही है। आँखों से वही रागरस बरस रहा है। मृदंग की धीमी गत पर वही होरी उमड़ रही है—'मति मारै दृगन की चोट रसिया....।'

कण्ठ लालित्य, स्वर का आरोह-अवरोह मीड़, गमक और मूर्छना —सब अपूर्व !

हरिमाधव घोड़े से नीचे उतर कर वहीं जमीन पर बैठ गया। दिन भर की भूख प्यास थकन, चिन्ता, अशान्ति जैसे सब घुल गयी। लगा यह कैसी पावन भूमि है ! कितनी रसमय, भाव मय ! और कितनी सुन्दर !

जब वह गीत खत्म हुआ और मृदंग की थाप समपर आकर रुक गयी, तो हरिमाधव सहज ही आगे बढ़कर सबके सामने नतमस्तक हो गया।

आधी रात होते-होते हरिमाधव थाने लौटा। अगले दिन रात भर वही होरी उसके मन प्राणों में घुमड़ती रही। वही मीड़, वही कण्ठ, वही मुंदी आँखें, वही अश्रुस्नात मुख और वही मूर्छना। तीसरे ही दिन सुबह होते-होते थाने में रिपोर्ट आयी कि उसी बिहारीजी के मन्दिर—वैष्णव मठ पर डाका पड़ा है।

हरिमाधव वहाँ तीर की भाँति पहुँचा। देखा, वैष्णव साधुओं पर बड़ी चोट आयी है। डाका डालने वाले कुल सात व्यक्ति थे। सब बन्दूक भाले लिए पैदल आये थे। मठ के प्रधान पुरुष से उन्होंने सिर्फ इतना पूछा कि कल रात को यहाँ नये थानेदार का आतिथ्य किया गया ?

हाँ बाबू, क्यों नहीं ?

इतना-सा उत्तर पाते ही उन लोगों ने सन्तों को बुरी तरह मारना शुरू किया। मठ को लूटा, और हँसते हुए यह कह गये कि खबरदार, अब ऐसा कभी न करना। हर नया थानेदार हमारा दुश्मन है। बस !

वे सातों व्यक्ति साधुओं के खूब पहचाने हुए लोग थे। उसी कुँअर गाँव क्षेत्र के लोग मौजा धनपुरा खास के। वे सातों व्यक्ति उसी दम बेलूरगंज थाने पर बुला लिये गये। उसी पाकड़ के वृक्ष के नीचे वे सब एक कतार में बैठा दिये गये। हरिमाधव भी उन्हीं के सामने उसी वृक्ष के तले। अब बगुलों का डर नहीं है। यह छाया पवित्र और शान्त है।

हरिमाधव ने उनसे पूछना शुरू किया, "बोलो तुम्हीं लोगों ने बिहारीजी के मन्दिर और मठ पर डाका डाला है न ?" वे सातों व्यक्ति चुप।

"चूँकि उन सन्तों ने मुझे वहाँ स्नेह से बैठाया, मुझे शीतल जल पीने को दिया और मुझे अपना समझा, यही उनका दोष है न ? इसका असली कारण तो मैं हूँ। तो तुम लोगों की नजर में कसूरवार—अपराधी तो मैं हूँ न ? क्योंकि मैं तुम्हारे थाने का नया दरोगा हूँ !"

वे सातों मूर्तिवत हरिमाधव को एकटक देखते रहे।

"बताओ, तुमसे किसने यह कहा कि हर नया थानेदार तुम लोगों का दुश्मन है ?"

वे सातों आदमी हैरान थे अपने इस नये थानेदार के मुख को देखकर। उसका अजब दुख, उसकी अजब चिन्ता, उसकी अजब आन्तरिक पीड़ा। उन्हें पहली बार ऐसा लगा कि नया थानेदार उन्हीं की ही तरह एक आदमी होता है। उन्हें यह भी अनुभव हुआ कि यातना, दण्ड से बड़ी कोई एक चीज होती है—जिसका नाम उन्हें नहीं

मालूम, पर उन्हें वह चीज आज पहली दफा, जीवन में पहली बार छू गयी।

वे सातों निरक्षर गँवार—पूरी जवानी पर चढ़े हुए पुरुष आज गाय की तरह हरिमाधव को ताक रहे थे। वे तो यहाँ थाने पर आये थे पुलिस द्वारा कड़ी से कड़ी यातना, मार पीड़ा सहने की दुश्चिन्ता से ! पर यह कैसा हाकिम है जो हम अपराधियों का दुख दर्द अपने ही माथे ले रहा है ! हरिमाधव बिल्कुल उनके सामने आ खड़ा हुआ। भारी आँखों से वह बोला, सुनो, तुम सब नादान मूर्ख हो, इसमें तुम्हारा कोई कसूर नहीं। चुपचाप जाकर साधुओं के पैरों पर गिरकर उनसे माफी माँगो और उनका एक-एक सामान जाकर वापस करो !"

वे सातों व्यक्ति एक दूसरे का मुँह देखते रह गये।

हरिमाधव उनके कन्धों पर हाथ रखकर उन्हें समझाने लगा, "विश्वास करो, जब तक तुम सब डाकू अपराधी हो, तब तक हम सब डाकू अपराधी हैं।

वे सातों व्यक्ति जिस रास्ते से अपने गाँव गये, अपने कन्धों पर डाके का सामान लादे हुए जिस रास्ते से वे लोग फिर बिहारी जी के मन्दिर-मठ पर आये, गाँवों के असंख्य व्यक्तियों ने उन्हें देखा—माथा झुकाये हुए उन्हें पाया। जैसे वे सब घायल लोहुआ-लुहान हों।

फिर यह खबर उधर के सारे इलाके भर में फैली कि नये थानेदार ने उन लोगों को इतना मारा, इतना मारा कि उन्होंने अपने प्राण बचाने के लिए वह अपराध स्वीकार कर लिया। और डाके का सारा सामान बरामद !

फिर उसी शाम के वक्त कुँअर गाँव के प्रधान, धनपुरा खास के अदालत सरपंच और राँका जमैइतापुर क्षेत्र के एम. एल. ए., ये तीनों

महानुभाव अपने आदमियों को लिये हुए बेलूरगंज थाने पर आ धमके। बड़े आवेश और क्रोध में, अधिकार और शक्ति के नशे में चूर!

"बुलाओ नये थानेदार को! कहाँ है वह?"

"जी हाँ, हाजिर हूँ। कहिए।"

हरिमाधव सिंह उन सबके सामने माथा ऊँचा किये हुए खड़ा हो गया।

"तुमने हमारे उन सातों आदमियों को इस तरह मारा क्यों? तुम हमारी जनता पर महज कानूनी कार्रवाई कर सकते हो, पर तुम अपने हाथ में कानून नहीं ले सकते।"

"तुमने मारा क्यों?"

"तुम इस तरह की हरकत करके इस थाने में एक दिन भी नहीं रह सकते।"

"तुम्हें मालूम होना चाहिए, यहाँ थानेदार महज जाने के लिए आता है। यहाँ रहने के लिए नहीं।"

हरिमाधव ने तपे हुए स्वर में सबको एक साथ एक दृष्टि में उत्तर दिया, "जी हाँ मैं यहाँ जीने नहीं, मरने आया हूँ। और जान-बूझ कर स्वयं अपनी इच्छा से यहाँ मरने आया हूँ।"

"तुमने इतना मारा क्यों?"

"मुझसे गलती हुई! एक बार आप लोग मुझे क्षमा कीजिए," हरिमाधव ने आरक्त मुख से यह कहा और उन सबके सामने हाथ जोड़ लिया।

अगली ही रात!

उसी एक रात में तीन डाके पड़े। पहला डाका कुँअर गाँव के प्रधान के घर। उसके बाद दूसरा डाका धनपुरा खास के सरपंच के घर पर और सुबह होते-होते तीसरा डाका रांका जमैइतापुर क्षेत्र के एम.

एल. ए. के घर पर। तीनों भयानक डाके। तीनों व्यक्तियों पर बेतरह मार और अजब लूट!

सारे क्षेत्र में हाहाकार मच गया। गजब का आतंक। इस बार वे सात ही नहीं। पच्चीस डाकुओं का वह जबरदस्त गिरोह। उन सातों के साथ वे सारे पच्चीस लोग पकड़ कर थाने पर ले आये गये। डोली पर उठाकर वे तीनों घायल प्रधान भी थाने पर आये।

हरिमाधव ने उन पच्चीसों व्यक्तियों को पहले खाना खिलाया। ऊपर से दूध और मिठाई! सभी हैरान। आश्चर्य चकित। फिर वह थानेदार हाथ जोड़कर उन व्यक्तियों को राजा बाबू सम्बोधित करते हुए उनसे प्यार की बातें करने लगा।

यह देखकर वे तीनों घायल प्रधान पुरुष चिल्ला उठे, "इन अपराधियों को तुम मारते क्यों नहीं? मार-मार के पहले तुम इन्हें बेहोश क्यों नहीं कर देते? तुम इनसे प्रेम का सलूक कैसे-क्यों करते हो? जरूर तुम इनसे मिले हो!"

"जी नहीं, मैं बेलूरगंज का थानेदार हूँ!"

"फिर तुम इन्हें मारते क्यों नहीं?"

"क्योंकि मैं अपने हाथ कानून नहीं ले सकता।"

"नहीं! इन अपराधियों को पहले मारना ही तुम्हारा कानून है। तुम इन्हें मारते क्यों नहीं?"

"जी नहीं, मैं इन पर सिर्फ कानूनी कार्रवाई कर सकता हूँ।"

"क्या है वह कानूनी कार्रवाई?"

"सिर्फ यही कि यदि मुझे चश्मदीद गवाह और असली साबूत मिले तो इन्हें मैं केवल उस दफे के भीतर गिरफ्तार करके जिले के हाकिम के सामने खड़ा कर सकता हूँ। बस।"

"यह सब बकवास है।"

"जी हाँ, आज यह सब बकवास है। आप लोग आज भूल गये—उस दिन आप लोगों ने मुझे क्या नसीहत और आज्ञा दी थी—मैं इस थाने में यहाँ के किसी भी अपराधी को मार नहीं सकता, मैं उन पर सिर्फ कानूनी कार्रवाई कर सकता हूँ। सो मैं मजबूर हूँ। उस दिन आप ही लोगों ने मुझ से कहा था कि इस तरह कानून अपने हाथ में लेने से मैं यहाँ से खत्म कर दिया जाऊँगा जैसे कि पिछले थानेदार यहाँ से खत्म होते गये हैं। मैं उस तरह यहाँ से खत्म नहीं होना चाहता। मुझे मेरी यह नौकरी चाहिए। मुझे मेरा यह जीवन चाहिए। मैं इस बेलूरगंज थाने में रहना चाहता हूँ।"

"मारो इन्हें, तुम पर कोई आँच नहीं आयेगी। इसकी जिम्मेदारी हम लोगों के ऊपर है।"

"कैसे ? किस तरह ?"

"मैं ग्राम प्रधान हूँ—सारे गाँवों का मालिक। गाँव की जनता मेरे हाथ में है। मैं जैसा कहूँगा, चाहूँगा, वैसा ही होगा।"

"और मैं सरपंच हूँ—न्याय तो मेरे हाथ में है।"

"और....और....मैं एम. एल. ए. हूँ, जिले से लेकर कौन्सिल तक मेरी दौड़ और पहुँच है।"

"और ?" हरिमाधव ने धीरे से पूछा।

"और....और....मैं गौतम ठाकुर हूँ, इस क्षेत्र के सारे क्षत्रिय, यह सारी क्षत्रिय जाति मेरे पक्ष में है।"

"मैं ब्राह्मण हूँ, सारे ब्राह्मण मेरे हाथ में है।"

"और मैं हरिजन एम. एल. ए. हूँ, सारा शिड्यूल क्लास मेरे कहने में है।"

"हूँ ! पर इससे मेरी रक्षा नहीं होगी," हरिमाधव पाकड़ के पीले पत्तों की ओर निहारते हुए बोला, मैं पुलिस विभाग का हूँ—मेरे

ऊपर पुलिस के नियम है। एस. पी., एस. एस. पी., डी. आई. जी., होम मिनिस्टर और....।" हरिमाधव के आस-पास पाकड़ के अनेक पीले पत्ते गिरते रहे। एक पीले पत्ते को उठाकर उसने देखा, पाकड़ के पत्ते पर काले-काले धब्बे उभरे हैं। उसी समय उसे उत्तर मिला, "हमारी इतनी ही शक्ति नहीं है दारोगा जी, और भी है ! वह देखिए....।"

उसी समय शहीद रोड से दौड़ती हुई एक जीप तेजी से आकर सामने पाकड़ के नीचे रुक गयी।

"यह लीजिए, आ गये हमारे भूतपूर्व राजा साहब—राजा साहब सुविक्रमपुर—राजा गजेन्द्रप्रताप सिंह।"

खद्दर की महीन धोती, कुर्ता और गान्धी टोपी, अंगुलियों में कई अंगूठियाँ और मुँह में पान, पचास वर्ष की प्रौढ़ अवस्था, सुडौल शरीर, देहदशा पर राजापन की मात्र परछाई, पर सारे मुख पर जैसे छइयाँ छइयाँ। मलिन, विषयी आँखें, मोटे होंठ। भद्दी आवाज।

हरिमाधव ने एक नजर में गजेन्द्रप्रताप सिंह को नीचे से ऊपर तक देख लिया।

"बड़ी खुशी हुई आपसे मिलकर।"

"मुझे भी।"

"यह क्या मामला है थानेदार साहब ? ऐसा गजब तो यहाँ कभी हुआ ही नहीं।"

"सच ?"

"हाँ, हाँ, बिल्कुल गजब।"

हरिमाधव कुछ बोलने ही जा रहा था कि थाने के दीवान ने अपने साहब को हाथ से संकेत किया। पाकड़ के वृक्ष से दूसरी ओर ले जाकर उसने अपने नये हाकिम को राजा साहब की शक्ति और पहुँच

का परिचय दिया, "सूबे के सबसे बड़े मिनिस्टर राजा साहब के समधी हैं। ये खुद एक एम. पी. के दामाद हैं। इनकी लड़की की शादी में खुद आई. जी. साहब बारात में आये थे। और....।"

"तो ?"

"तो साहब ऐसी बात है कि जरा गौर कीजिए, समझ लीजिए कि....।" हरिमाधव ने तब तक पलटकर देखा कि राजा साहब अपने हण्टर से उस खामोश बैठे हुए आदमियों को धड़ाधड़ मार रहे हैं।

हरिमाधव ने दौड़कर राजा साहब का हण्टर छीन लिया, "खबरदार, आप अपने हाथ में इस तरह सरकार का कानून नहीं ले सकते।"

"चुप रहो। कौन है यहाँ सरकार ?"

"मैं हूँ।"

हरिमाधव ने गरजकर कहा और अपने हाथ में भरी हुई पिस्तौल संभाल ली। थाने के बारहों सिपाही बन्दूक लिये सावधान हो गये।

राजा साहब की सिट्टीपिट्टी गुम! तनी हुई भौंहें ढीली पड़ गयीं, तत्काल।

"तुम इस इलाके को नहीं जानते ?"

"जानता हूँ। मैं भी इसी देश समाज का हूँ। यह अंगरेजी राज्य नहीं है।"

"तुम मुझे नहीं जानते ? तुम्हें मेरी ताकत का पता नहीं ?"

"क्या है तेरी ताकत ? जरा मैं भी तो सुनू! जिस शक्ति ने तुम्हारा राज्य खत्म किया, इस देश की गन्दी जमींदारी खत्म की, सबसे बड़ी ताकत वही है! तुम लोग अब ताकत नहीं, चोर हो, डाकू हो, समाज के गिरहकट हो! अपराध के नाम पर ये जो पन्द्रीस आदमी यहाँ बैठे हैं, ये अपराधी जरूर हैं, पर ये खुद अपराध नहीं हैं। अपराध हैं आप, और आपके ये तीनों दोस्त! इन तीनों महानुभावों ने अब तक दूसरों

को ही पिटयाया था, मारा था, दूसरों पर ही इन्होंने डाके डलवाये थे। और ऊपर से ये कानून, सेवा और न्याय के नारे लगाते थे। और आज जब इन्हें पहली बार—जीवन में पहली बार मार, यातना, क्षति, चोट और डाके का अपने ऊपर अनुभव हुआ तो इनके ही लोग इन्हें पहली बार अपराधी लगे हैं। और जो अब तक, गत इतने वर्षों तक इस बेलूरगंज थाने में घटित हुआ है, वह क्या है ? कौन जिम्मेदार है उसका ? अपने जितने थानेदारों का यहाँ कत्ल हुआ है, जितने लोगों को यहाँ फाँसियाँ हुई हैं, खून हुए हैं, जेल डामिल हुए हैं, उन सबके दाग किन हाथों में हैं ?

"जनता वही है—जिसने आजादी की लड़ाई में निर्भय और स्वार्थहीन होकर सन् बयालिस में बेलूरगंज का वह महाकाण्ड किया था, और आज भी जनता वही है जो आज अंधेरे में अपनी ही आत्महत्या कर रही है।

"जनता वही है, जिसे तब सन् बयालिस के बाद उसका मूल्य मिला था। फर्क इतना है कि आज उसे अपना मूल्य चुकाना पड़ रहा है।

"सिक्का वही एक है। पर उसे मूल्य देने वाले दूसरे हैं। काश, सिक्का ही अपना सही मूल्य दे पाता।"

बेलूरगंज का नया थानेदार जब यह कह रहा था, तो वहाँ के सारे लोग एक टक उसका मुख देख रहे थे।

चौराहे की गिमटीनुमा दूकान वाला वह लंगड़ भूज अपनी टूटी टाँग नचा कर कहता है, "भइया मोर, अब डारो डाका, अब करो कतल! पूड़ी मिठाई मिलेगी, बेलूरगंज के थाने में! खूब नस पकड़ी

है भइया इस नये दारोगा ने। न जेल, न मार, न मुकदमा। क्योंकि जब डाका डाका ही नहीं है, तो जेल मुकदमा कैसा ? जिसका सामान, गहना गुरिया, रुपया पैसा, उसी को फिर वापस ! न कूकुर भूँका न पहरू जागा ! सब समझ गये मन-ही-मन !"

लंगड़ भूज आज इतने वर्षों बाद पहली बार अपने मुसाफिर ग्राहकों से बताने लगा है कि उसकी यह दायीं टाँग अंग्रेज पुलिस की गोली से टूटी है। उसी बेलूरगंज थाने के महाकाण्ड में।

पन्द्रह वर्षों बाद कल लंगड़भूज ने शहीद रोड पर अगरबत्ती जला-कर उस पर कनेर के फूल चढ़ाये हैं। आकाश की ओर देख कर मन ही मन वह बोला है, इन्कलाब जिन्दाबाद !

बेलूरगंज थाने पर दो घण्टे रात बीती है। पाकड़ के वृक्ष के नीचे वही राजा साहब वाली जीप सहसा आकर रुक गयी है। उसमें से एक स्त्री निकलती है। सधे कदमों से वह थानेदार साहब के क्वार्टर की ओर बढ़ रही है।

थाने की ड्यूटी पर खड़ा हुआ पुलिस आवाज देता है, "हू कम देयर ?" स्त्री जवाब देती है, "फ्रेण्ड !"

और वह स्त्री बड़े विश्वास के साथ बढ़ कर साहब के घर में चली जाती है।

हरिमाधव के कमरे में जाकर वही स्त्री, बिहारी जी के मन्दिर में वैष्णव सन्तों के बीच वही होरी गाने वाली—मति मारै दृगन की चोट रसिया....

हरिमाधव उसे एक टक देखता है—एक अपूर्व सुन्दरी—बसन्त ऋतु की अभिसारिका-सी। गुलाबी वस्त्र, अंग-अंग में अलंकरण, कजरारी आँखों में मृदंग के बोल।

"उस दिन सिर्फ नाम जाना था—चन्द्रमुखी ! उतने से ही, उस

मदिर गान से ही यह कलंकित-बदनाम धरती मुझे धन्य लगने लगी है। कितने सुन्दर हैं यहाँ के लोग। कैसी पावन है यह भूमि—तभी से यह लगने लगा है मुझे !"

"और मेरा परिचय ?"

"उस परिचय से क्या होगा ?"

"हूँ !"

दोनों सहज ही घर से बाहर निकल आये—जैसे वर्षों दोनों साथ रहे हों।

"यह किसकी जीप पर बैठ कर तुम यहाँ आयी हो ?"

"वही तुम्हें बताना है !"

निर्जन शहीद रोड पर दोनों धीरे-धीरे पैदल बढ़ते चले जा रहे हैं। शरद ऋतु का निर्मल आकाश सितारो की रोशनी से अपनी सुगन्ध बिखेर रहा है।

चन्द्रमुखी अपनी सारी बात कह कर हरिमाधव से सखी की तरह बोली, "सारी बातें बतायी भी तो नहीं जा सकतीं। अच्छा है, तुम उसे जानो भी नहीं।"

"क्या ?"

चन्द्रमुखी के मुख पर एक क्षण के लिए जैसे किसी ने हल्दी पोत दी हो। फिर वह संभल कर बोली, "जिसकी जीप पर चढ़ कर मैं यहाँ आयी हूँ, वही राजा साहब सुविक्रमपुर—जिनको पहली बार तुमने उस तरह उस दिन डाँट लगायी है, उन्होंने मेरे पति से दुर्गा जी के मन्दिर में मेरे सामने कसम खायी है कि जब तक मैं खुद नहीं चाहूँगी, तब तक वह मेरी प्रतीक्षा करेंगे।"

"क्या नहीं चाहोगी ?"

"अभी इससे ज्यादा कुछ मत जानना चाहो। मैं आगे कुछ बता-

ऊँगी भी नहीं ।"

चन्द्रमुखी सहसा हरिमाधव का हाथ पकड़ कर वहीं खड़ी हो गयी ।

"तुमने इस इलाके का असली अपराध पकड़ा है । मैं तभी से तुम्हारी विजय के लिए माँ दुर्गा के मन्दिर में हर दिन पूजा करती हूँ—तुमसे मैं एक बात कहना चाहती हूँ !"

"बोलो, आज्ञा दो," हरिमाधव ने चन्द्रमुखी की आँखों पर अपनी नजर रोप कर कहा ।

चन्द्रमुखी धीरे से बोली, "तुम कल प्रातःकाल मेरे घर आवोगे ! उसी तरह अपने घोड़े पर चढ़े हुए ।"

"जरूर आऊँगा ! पर इससे तुम्हारा कोई अहित तो न होगा न ! ....मेरा मतलब....।"

"हाँ, हाँ, मैं समझ गयी ! मेरा तुमसे कभी कोई अहित न होगा । सच, तुम्हें मैं न जाने कब से जानती हूँ—ऐसा मुझे लगता है कि अपने इस जन्म से भी पहले से ही तुम्हें जानती हूँ !" फिर वह कुछ हँस कर बोली, "कुँअर गाँव की कुँअरानी, और सुविक्रमपुर राजा की सम्बन्धिनी होने के नाते मुझे बहुत-बहुत विशेषाधिकार मिले हैं । इस सत्य को यह पूरा इलाका जानता है—तभी मुझे कोई पगली रानी कहता है, कभी कोई साधुनी, कभी कोई कलंकिनी और सभी कोई....छोड़ो इन बातों को !"

चन्द्रमुखी खिलखिला कर हँस पड़ी

हरिमाधव को रात भर नींद नहीं आयी । उसे लग रहा था, वह चन्द्रमुखी उसके बगल में ही खड़ी है । और उसकी स्वास सुगन्ध उसे रह-रह कर छू रही है ।

वह जैसे रात भर उससे वही बातें करती रही है । "तो मेरे हाई स्कूल पास करते ही मुझे आगे पढ़ने से रोक लिया गया । घर ही पर

आगे केवल मेरे संगीत की शिक्षा चलती रही । ज्योतिषियों ने मेरी कुण्डली के आधार पर मुझे मंगली करार दिया । भला सोचो तो सही इस अपराध का न्याय कोन करेगा ? ज्योतिषी और मेरी जन्म-कुण्डली अपने जीवन पर भी मनुष्य का अधिकार नहीं । जीवन मेरा, और इसपर निर्णय देने वाला कोई और !" चन्द्रमुखी चुप देखती रही, देखती रही । फिर मुस्करा कर कह रही है, "खैर, मेरे पिता तो महज तालुकेदार थे—पर मेरे नानाजी तिरहुत के राजा । मुझे बहुत मानते थे वे । मुझे वे तिरहुत की राजकुमारी कहते थे । यह बहुत पहले की बात है । जब मैं छोटी थी, दस वर्ष की और तब वे मेरे नाना जी जीवित थे । यहीं पहली बार इस सुविक्रमपुर के राजा ने मुझे देखा था ।

...."सुनो माधव, गौतम की लड़की सिर्फ गौतम ही के यहाँ ब्याही जाती है । ऊपर से मैं मंगली ! सो मंगली पुरुष से ही मैं ब्याही जा सकती थी । फल यह हुआ कि इसी सुविक्रमपुर के राजा ने जोड़-गाँठ लगा कर मेरी शादी इसी कुंअर गाँव में बड़े कुंअर के संग....। सुनो, मेरी उस शादी के अभी चार ही वर्ष हुए हैं । मेरे पति को भी यह मालूम है कि उनसे यह मेरी शादी क्यों हुई है ? वे सब जानते हैं । मैं भी जानती हूँ, पर और कोई....। सुनो न माधव, तब से राजा की वह जीप रात होते ही रोज मेरे घर पहुँच जाती है । सूनी जीप में से वही बुड्ढा ड्राइवर धीरे से पुकारता है—रानी साहब !

"मुझे हमेशा हँसी आ जाती है—रानी साहब ! रानी....रानी.... हं....हं....हंऽऽ. . ऽऽ. . ऽ रानी....!

"मैं उस जीप पर जाकर धीरे से बैठ जाती हूँ । और जहाँ मैं कहती हूँ जीप मुझे वहीं ले जाती है । और मैं अब तक सिर्फ दो जगह गयी हूँ —नित्य जाती हूँ—एक वही बिहारी जी के मन्दिर के आँगन में और एक गंगा के अंक में । वह जगह मैं दिखाऊँगी तुम्हें । और आज तक

मैंने वह सुविक्रमपुर नहीं देखा। पर यह सब क्या है, मैं समझ नहीं पाती! अपराध के जाल कितने महीन बुने होते हैं, पर कितने मजबूत! कितने अभेद्य! बहुत से असंख्य अपराध तो ऐसे भी होते हैं माधव, जो कहीं कहे तक नहीं जाते, कहे जा भी नहीं सकते, हाँ....। फिर उनके न्याय का तो प्रश्न ही नहीं उठता। एक बात और....अपराध न्याय से बड़ा होता है माधव! न्याय सौन्दर्य है, अपराध शक्ति है। हमारे देश में युग युगों से केवल इसी शक्ति की ही तो उपासना हुई है। सौन्दर्य की पूजा कब हुई है? तभी तो इतने अपराध हैं न! अच्छा छोड़ो इन बातों को! लाओ देखूँ मैं तुम्हार हाथ! हाय! ये तो कितने कोमल हैं! कितने सुन्दर! कितने पावन....! हे माँ! सुनो मेरी विनती, तुम शक्ति की जगह केवल सुन्दर माँ क्यों नहीं हो जातीं? केवल सुन्दर!"

हरिमाधव की सुबह जब एकाएक नींद टूटी तो उसे ऐसा लगा कि उसके कमरे में वही असंख्य चन्द्रमुखी खड़ी है! सुन्दर, सुकोमल, अवर्णनीय!

कुंअर गाँव की सीमा का जहाँ अन्त है, बड़े कुँअर की वहीं कोठी है। पक्की हवेली। जिस पर वर्षों से चूनाकारी न हुई है। यह कभी पूरी हवेली थी या रही होगी, ऐसा लगता है। हवेली का पिछला हिस्सा कई जगह से गिर चुका है। उसकी नंगी दीवारें न जाने किस सबूत के लिए सिर्फ खड़ी हैं। हवेली के चारों ओर केले, अमरूद और कटहल के वृक्ष लगे हैं। उनमें से बहुत से आज टूटे, सूखे और रौंदे-पिटे हुए। हरिमाधव का घोड़ा दरवाजे के सामने जाकर खड़ा हो गया। वहीं से हरिमाधव अपनी आँख उटेरे हुए चारों तरफ देख रहा है—जैसे वह कोई स्वप्न देख रहा हो।

वह घोड़े से उतरा ही था कि उसके सामने सफेद वस्त्रों में स्वागत के लिए वही चन्द्रमुखी आ खड़ी हुई।

हरिमाधव भीतर ले जाया गया।

बड़ा-सा कमरा—सामान से पटा हुआ। मकड़ी के जालों से भरपूर। बड़े से पलंग पर एक साठ वर्ष का पुरुष लेटा है—अधमरा अपाहिज-सा। यही पति है, चन्द्रमुखी का। कभी सारे कुँअार गाँव का यही तालुकेदार। नाम है कुँवर जयसिंह।

हरिमाधव को उन्होंने देखते ही उससे अपना हाथ मिलाया। काँपता हुआ हाथ, ज्वरग्रस्त! फिर कुँवर जयसिंह के अबाध आँसू! वह निरीह, दयनीय मुख!

फिर बड़बड़ाकर सुविक्रमपुर के राजा को गालियाँ देने लगे। बताने लगे कि अपराध की सीढ़ियाँ होती हैं—ऊपर से नीचे तक परस्पर जुड़ी हुई। बेलूरगंज थाने की यही सीढ़ियाँ हैं—ग्राम प्रधान, सरपंच, एम० एल० ए० और सबसे ऊपर वही सुविक्रमपुर का राजा। कौन हटायेगा, तोड़ेगा इस सीढ़ी को? यह सीढ़ी अनन्त है। ऊँची फिर और ऊँची। सब जगह पहुँचने वाली, सब जगह डोलने-फिरने वाली!

हरिमाधव अपना घोड़ा दौड़ाता हुआ सुविक्रमपुर में पहुँचा है। अपनी डायरी और नक्शा खोलकर वह देखता है कि सबसे ज्यादा अपराधी यहीं के लोग हैं। दफा तीन सौ छियत्तर, तीन सौ पंचानबे, तीन सौ सत्तानवे और तीन सौ दो। और सजायाफ्ता इलाके में सबसे कम यहीं के लोग हैं। पुलिस को यहाँ से गवाह नहीं मिलते। सबूत नहीं मिलते। यहाँ एक भी कोई हिस्ट्रीशीटर नहीं है।

नीचे की जनता कितनी दबी है यहाँ।

हरिमाधव को ये लोग हाथ मुँह छिपा कर सलाम कर रहे हैं कि यह खबर कहीं राजा तक न पहुँच जाय। इतना आतंक! अगले चुनाव

में यही राजा पार्लियामेण्ट की मेम्बरी के लिए वोट लड़ेगा। और जीतेगा, यह सारी जनता अभी से इसे समझ रही है।

गंगा का कछार फिर गंगा जी। गंगा के पानी में यह छोटा-सा चट्टान-शिखर। यही वह दूसरा स्थान है, चन्द्रमुखी का। यहीं ले आयी है वह अपने साथ हरिमाधव को। गंगा का पानी अब निर्मल हो उठा है। पूस के दिन हैं। बहुत ठण्ड है। अँधेरी रात है। बस वह हरिमाधव के संग मौन मन्त्रमुग्ध खड़ी है, खड़ी है। न जाने गंगा का कितना कितना पानी उतनी देर में उधर से बह गया है!

"सब जल को समुद्र मिलेगा क्या? बताओ! उत्तर दो....।"

"पता नहीं।"

"फिर भी जल को तो बहना ही है—चाहे जो हो! जो प्रकृति है, स्वभाव है, निज है वह तो जियेगा ही। उसे जीना भी चाहिए! क्यों?...."

"क्यों, वह जिये नहीं क्या?"

चन्द्रमुखी ने हरिमाधव को देखा और उसने यही अनाहद प्रश्न सुना। और वह काँप उठा। पूस की ठण्ड से नहीं। प्रश्न के ताप से। उन आँखों में बसी अथाह नीलिमा से। हरिमाधव के दोनों हाथ अपने मुख पर रखकर वह अंत में बोली, "एक दिन यह गंगा माँ मुझे बुलाती हैं कि आओ बेटी मेरी गोद में आ जाओ। फिर दूसरे दिन बिहारी जी के मन्दिर से उनकी बाँसुरी की पुकार आती है कि तुम मेरे पास आ जाओ मेरी राधा! फिर मैं वहाँ भागती हूँ। यहाँ फिर वहाँ। और यह जीप सदा मेरे पीछे दौड़ती रहती है। और यह मुझसे कहती है, चन्द्रमुखी तुम्हें सुविक्रमपुर जाना है। तुम्हारी नियति यही है। तुम मंगली रानी हो।"

"नहीं नहीं, ऐसा कभी नहीं होगा!" हरिमाधव ने व्रत स्वर में कहा।

"सच?"

"हाँ!"

"जब से तुम्हें देखा है, मुझे भी यही विश्वास है।"

"मुझे भी!"

"सुनो!"

"बोलो!"

"आज से कुछ ही दिन बाद जब पूस मास की पूर्णमासी रात होगी—पूरे चाँद की रात—उस दिन आधी रात के समय मैं पैदल उसी शहीद रोड से तुम्हारे पास आऊँगी।"

"और मैं?"

"तुम वहीं अपने आँगन में बैठे मेरा इन्तजार करोगे। मैं चन्द्रमुखी हूँ न!"

"नहीं, तुम्हें कष्ट होगा! इतना लम्बा पैदल रास्ता, रात का समय और यह अपराधी इलाका!"

"नहीं नहीं, मेरा वही सुख होगा! रात तो मेरी सखी है। इलाका मेरा अपना है।"

"सुनो तो!"

"नहीं तुम मेरा सुनो—जिस रास्ते से चल कर मैं तुम्हारे पास आऊँगी, उस रास्ते के लोग तुम्हारी अब पूजा करते हैं। हमारे हरिमाधव सरकार! जुग-जुग जियो साहेब!"

और वह अपनी शिशुवत हँसी में हरिमाधव को बहा ले गयी।

पूस की पूर्णमासी रात!

थाने के चौराहे का वह लंगड़ भूज बड़ी रात तक अपनी खझड़ी बजाता हुआ गाता रहा : अरे कैसे दिन काटें प्रभु जतन बताये जा ! जतन बताये जा....। कैसे दिन कटिहैं ?

आधी रात बीत गयी।

हरिमाधव अपनी साँस रोके प्रतीक्षा में खड़ा था।

एक घड़ी और !

हरिमाधव का दिल बहुत तेजी से धड़कने लगा था। फिर रात का पिछला पहर। हरिमाधव जैसे पागल हो जायेगा।

वह तेजी से घर के बाहर आया, उसे सुनायी पड़ा पाकड़ के वृक्ष पर दो-एक बगुले आये हैं। और पाकड़ के पीले-पीले पत्ते जमीन पर गिर रहे हैं।

वह उसी शहीद रोड पर भागा। भागता चला गया। जहाँ शहीद रोड की मोड़ पर बकाइन की एक झाड़ी थी, उसके पास ही कोई एक चीज चमकी। उसने देखा, चन्द्रमुखी की लाश। रक्त में डूबी हुई। हरिमाधव जैसे संज्ञाहीन होने लगा।

पूर्णमासी का चाँद धूमिल होकर पश्चिम में ढल गया था। उसकी अन्तिम किरणें चन्द्रमुखी को छू रही थीं। उसका अनन्त में सदा के लिए खुला हुआ मुख। उसका सोलहों शृङ्गार—उसका रक्तरंजित परिधान—सब पर चाँदनी की वही अन्तिम किरणें।

अपराधी की तरह हरिमाधव अपने घर में रोता रहा। चन्द्रमुखी की लाश उसी पाकड़ के नीचे रखी थी। सारा कुँअर गाँव और राँका जमैइतापुर वहाँ निस्तब्ध घिरा खड़ा था। सारे लोग गवाह थे कि चन्द्रमुखी की हत्या सुविक्रमपुर के राजा गजेन्द्रप्रताप सिंह ने की है।

हत्यारा अपराधी ! जनता हत्यारे के लिए सारा सबूत लिये खड़ी रही।

लाश का पोस्टमार्टम हुआ। पोस्टमार्टम की रिपोर्ट चिता की ज्वाला की तरह धधक रही थी।

तीन सौ छिहत्तर और तीन सौ दो !

गजेन्द्रप्रताप सिंह और उसके चार आदमियों को हथकड़ी में कस-कर थाने की हवालात में बन्द कर दिया गया था।

हरिमाधव उसी पाकड़ के वृक्ष के नीचे अपने सारे कागजात, सबूत, गवाह सबको सँभाले हुए बैठा था। अभी अपराधियों को उसी तरह बाँधे हुए जिले के हाकिम के सामने हाजिर किया जायेगा। फिर जेल। काल कोठरी। मुकदमा, सबूत और गवाह, फिर अपराधियों की फाँसी। सहसा हरिमाधव के ऊपर पाकड़ के ऊपर बैठे हुए किसी बगुले ने बीट कर दी। ठीक उसके माथे पर। वह तिलमिला उठा। ऊपर देखा तो वृक्ष का बगुला अदृश्य था।

सारी तैयारी करके दोपहर होते-होते जब वह जिले के लिए रवाना होने लगा, उसी समय पुलिस हेडक्वार्टर से कोई सरकारी आदमी आया। हरिमाधव को धीरे से कागज दिया।

ऊपर से आया है कि यह केस दबा दिया जाये ! हरिमाधव के सामने उसी क्षण अन्धकार फैल गया। वह लड़खड़ा कर वहीं अपनी कुर्सी पर गिर गया।

धीरे-धीरे कुछ ही देर में पाकड़ के वृक्ष के ऊपर वही असंख्य बगुले उड़ कर आ गये। वही शोर, वही बीट ! पाकड़ के पीले-पीले पत्ते बहुत तेजी से वहाँ झरने लगे।

हरिमाधव की जब चेतना लौटी तो उसने देखा, उसके ऊपर बगुलों की बीट बरस गयी है। वह घृणा से तिलमिला उठा।

उसने दौड़ कर अपनी बन्दूक उठायी। बेतहाशा वह बगुलों पर

फायर करने लगा।

न जाने कितने बगुले पाकड़ के नीचे ढेर हो गये। हरिमाधव के कपड़े पर, माथे और हाथ पर न जाने कितने खून के कतरे गिरे, पर उसने देखा, पाकड़ के वृक्ष पर से अब बगुले उड़ नहीं रहे हैं। वे महज चीखते हैं, चिल्लाते हैं और आकाश में मण्डरा-मण्डरा कर फिर उसी पाकड़ पर बैठ जाते हैं।

सुन्दरी

दसई ने कल रात फ़रीदपुर गाँव छोड़ दिया।

सरजू के तट पर पंचपेड़वा, वहीं घँजोल, मइन्दी और फ़रीदपुर गाँव के मुर्दे फूंके जाते थे।

दूसरी ओर उसी मुर्दघट्टे के पास अकेला आम का पेड़। उसी के नीचे दसई ने झटपट अपनी राम मड़ैया छा ली।

दसई की औरत समुन्नरी मड़ई में सोएगी, और उसके दोनों बच्चे, ऊधो और दुलरी, पिता के संग बाहर जमीन पर सोएँगे। धरती माई बिछौना, अकास मामा ओढ़ना!

दसई ने कल रात समुन्नरी के मुँहैं-मुँह बहुत मारा था। उसका मुँह आज तक फूला हुआ है।

गाँव छोड़, उस आम के पेड़ के नीचे बसकर, इस नये घर में अब तक न चूल्हा गड़ा, न जला। आहत समुन्नरी तब से कराहती हुई फूस की चटाई पर पड़ी हुई है। दसई और उसके दोनों बच्चे तब से चोरी-चोरी पँचपेड़वा के आम और बाबू की बगिया का फरेंदा खा-खाकर सरजू का पानी पी रहे हैं।

संध्या समय दसई ने समुन्नरी के उदास मुख को देखा। मड़ई में

आग तो थी नहीं। दसई अपने अँगौछे के सिरे को गोला लपेट कर, मुँह के भाप से फूँक-फूँक कर, उससे समुन्नरी के मुँह को सेंकने लगा। समुन्नरी एक लम्बी साँस लेती हुई उठ बैठी।

दसई सरजू के किनारे गया।

सरजू नदी धीरे-धीरे बढ़ रही थी। बहुत तेज पुरवाई थी! नदी के किनारे काँकर में झींगा पकड़ने का अनमोल अवसर था।

मुश्किल से आध ही घण्टे में दसई ने सेरों झींगा अपने फाड़ में भर लिया। घटवार से हाथ में आग लिये हुए वह जल्दी-जल्दी अपनी मड़ई पर पहुँचा। झटपट झींगा साफ कर वह आग जलाने चला और समुन्नरी मसाला लिये हुये आयी। धरती में खुदे हुए उस चूल्हे के आस-पास रेखा खींचकर उसने चौका क़ायम कर लिया।

पँचपेड़वा पर दो-चार गाँव के लोग आकर, सुरती-तमाकू पी रहे थे। कमर पीछे हाथ बाँधे टहलते-टहलते दसई वहाँ आया।

चिलम पीते-पीते दसई ने दुखी होकर कहा कि फ़रीदपुर गाँव भी अच्छा नहीं।

ठाकुर की बड़ी बखरी में समुन्नरी सुबह-शाम चौका-बरतन करने, दुपहरी में अनाज उठाने-धरने का काम करती थी; सो बब्बन बाबू की नजर समुन्नरी पर खराब हो गई। भइया, क्या जमाना हो गया! किसी की बेटी-बहू मेहनत-मजूरी करके दो टुकड़ा रोटी भी चैन से न खाने पावे। एक ने बीच ही में दसई को टोक कर दूसरे की ओर आँख मारते हुए कहा, "समुन्नरी भी तो कम नहीं है, ठाकुर की बखरी में मरदों से ठिठोली करती रहती है।"

"वह तो उसका सुभाव है, बबुआ," दसई ने बताया, और यह कहते-कहते वह गुस्से से भर गया कि बब्बन बाबू ने समुन्नरी का हाथ क्यों पकड़ा। वह हँसबोल है, पर बब्बन बाबू उससे क्यों छेड़खानी

करते हैं? कहाँ राजा कहाँ परजा!....परजा का मतलब यह नहीं कि उसके पास अपनी इज्जत ही नहीं। परजा के पास तो वह है, बबुआ, कि कोई उससे आँख न मिला सके। हम अपना रकत सुखाते हैं, ताकि बाग-बगइचा में फूल खिले, खेत-क्यारी में धान लहलहाय! मुला अब का बताई? बबुआ, हम तो किसी की बहू-बेटी से आँख नहीं मिलाता। बाबू लोगन के औरत चाहे सुन्दर भी न हों, पर छिपा रखेंगे उन्हें दो अँगना भीतर, कोट में। मुला हमार औरत अगर सुन्दर है, तो वह गाँव की मौजी है का?

समुन्नरी छः बच्चों की माँ है। दसई का खयाल है कि समुन्नरी जैसी सुन्दर औरत उस गाँव-जवार में नहीं है। पर सब उसे क्यों इस तरह निहारते हैं? दसई बेचारा क्या करे? उसे कहाँ लेकर भाग जाए?....सतयुग-त्रेता का वह जमाना कहाँ गया कि, परतिरिया बहिनी, सुतनारी, सुनु मूरख ये कन्या चारी, इन्हहि कुदीठ बिलोके जोई, ताहि बधे कुछ पाप न होई।

समुन्नरी इतनी सुन्दर है तो इसमें दसई बेचारे का क्या कसूर है! लोग उससे ख़ामख़ाह गाँव छुड़ा देते हैं। वह कब चाहता है कि समुन्नरी सुन्दर दीखे? तभी तो यह आये-दिन समुन्नरी को मुँह-मुँह मारता है। उसका मुँह नोचता रहता है। बदन पर वही मोटिया की एक धोती और काला फटा झुलया, कलाइयों में मुश्किल से काँच की चार-छः मोटी चूड़ियाँ, बस, न बदन पर कहीं एक गहना, न अलंकार!

पर समुन्नरी थी कि उसकी अथक जीवन-शक्ति का कहीं आर-पार ही नहीं मिलता था। सरजू नदी गरमी में सूख जाती है, पर समुन्नरी तो समुन्दर है, वह आज तक कभी नहीं सूखी। उसमें केवल ज्वार-भाटा ही उठता है। अभाव और यातना से कुछ भाप बनकर आँसुओं

की शकल में धीरे-धीरे ऊपर उड़ जाता है। और ऊपर जाकर वह बादल बनकर कहीं छा जाता है, और सरजू के उस तट की सारी नंगी-जली धरती पर बरस जाता है।

समुन्नरी जब काम करती तो उसके शरीर में इधर-उधर, पैर से लेकर बाँह और कलाइयों तक, छोटे-बड़े अनार फल आते हैं। कभी आँख में सावन-भादों, कभी बसन्त। हाथ में घड़ा भरकर चलती, या कठिन बोझा उठाती, अथवा फाड़ बाँधकर खेत में कुदाल चलाती तो समुन्नरी के आँचल में जैसे दूध-अन्न की बँधी गठरी खिसक कर खुलने लगती। हँसती तो लगता, समुन्नरी कभी दूब की छड़ी से भी नहीं छुई गई है।

झींगा भात खाकर ऊधो और दुलरी ज़मीन पर कथरी बिछा कर सो गए। समुन्नरी ने केवल भात का माड़ पिया, पर पेट-भर पिया।

समुन्नरी दसई की तरह झींगा, मछली, कलिया, चौगड़ा थोड़े खा सकती है। हाँ, दसई और बच्चों के लिए बना अलबत्ता देती है! यह और बात है। उससे और समुन्नरी से क्या मतलब! अरे, समुन्नरी तो अहीर की लड़की है, ग्वालिन है, ग्वालिन!....हम तो मथुरा की ग्वालिन, हम तो मथुरा की ग्वालिन, बेंचन जात दही रे दही!....और दसई कुर्मी है कुर्मी—वह भी गुजराती नहीं, जैसवार।

समुन्नरी माड़ पीकर बच्चों के साथ वहीं बाहर ही सो गई। दसई चौधरी भरपेट खूब चाँड़-चाँड़कर झींगा भात खाकर और होंठ में खैनी ठूँस कर छैला की तरह गुनगुनाते हुए मड़ई से आगे बढ़ा, 'बिना मोती के चैना पड़त नाहीं!....'

समुन्नरी ने दसई राम को ज़रा-सा भी टोका नहीं। वह जानती थी कि बुढ़ऊ छैला गुनगुनाते हुये बागों में चोरी से आम बीनने जा रहे

हैं। भूल में कई बार समुन्नरी ने दसई को टोक कर देखा था कि वह किस तरह उससे पिटी थी।

खूब लोट-लोटकर पुरवाई बह रही थी....भुइयाँ लौट बहै पुरवाई, सूखी नदी नाव चलाई....सरजू नदी की धार से थपा-थप और हल्ल-हल्ल की तेज आवाज उठ रही थी। ऊँचे कगार से हवा बेतरह टकरा-कर इस तरह श्रं-श्रं कर रही थी जैसे असंख्य भूत-पिशाच पंच-पेड़वा के मुर्दघट्टे से उठ-उठ के, कगार से सर टकरा-टकरा कर सारी दिशाओं में उड़ रहे हों। जमीन में लोटती हुई पुरवाई धूल के पंख बाँधे जैसे फुँफकारती हुई नागिन हों। और पंच-पेड़वा के हर पेड़ पर एक भूत, एक तेलीमसान, एक जिन्नात, एक औघड़ और एक पिचास! बाबू के बाग में मुआँ जिरई अपने जोड़े के संग भयावह स्वर में बोल रही थी, खोदो-तोपो मुआँ-मुआँ!....दूर कहीं सरजू के कगार पर कोंहरडिग्गवा हूँ-हूँ कर रहा था। घाट की ओर सियार आपस में बड़े क्रोध से कटकटा-कटकटा कर लड़ रहे थे। नदी में कोई लाश उन्हें मिल गई होगी।....कितना भयानक और डरावना था वह सारा! यह समुन्नरी उस सब की अभ्यस्त हो गई थी। उसके वे नादान बच्चे भी, दस साल का ऊधो और छः साल की दुलारी।

समुन्नरी वहीं कथरी पर लेटी हुई आसमान के शून्य में यूँ ही, बिना किसी लक्ष्य, भाव अथवा अर्थ के निहार कर देख रही थी। उसने देखा, आसमान में तारे हैं नक्षत्र हैं, इतने सारे! हाँ, सब के एक-एक नक्षत्र, एक-एक अपना भाग्य!....पर उसका नक्षत्र कौन है? समुन्नरी उन असंख्य झिलमिलाते हुए नक्षत्रों में अपना नक्षत्र ढूँढ़ने लगी। ये नक्षत्र तो सब बड़े-बड़े हैं। मेरा नक्षत्र तो बहुत छोटा-सा होगा! वह भी कहाँ खो गया है? कौन है उनमें मेरा? समुन्नरी

गरदन उठाती हुई दूर देखने लगी, दूर पश्चिम की ओर, जहाँ एक नक्षत्र आसमान से टूटकर ज़मीन की ओर आते-आते सहसा बुझ गया। आह ! वही समुन्नरी का नक्षत्र था, वह अब आसमान से टूटकर कहीं उस अभेद्य अन्धकार में गायब हो गया। तो····

समुन्नरी उसी ओर देखने लगी। उसी ओर उसकी ससुराल का वह गाँव है, तिलकौरी। सौ घर का पक्का अहिराना। उसके ससुर का घर गाँव के बीचो-बीच है। दरवाजे पर नीम का खूब छतनार पेड़ है। दो खण्ड का खपरैल का मकान। दीवारों में पक्की ईंटों की कार्निस। दरवाजे पर चार बैलों की घारी। दायें भैंस-गाय बाँधी दुही जाती हैं, बाईं ओर पक्की चरन है।

मेरे ससुर के तीन लड़के ! बड़कू का विवाह माझा में हुआ है। बड़की खूब फाग गाती थी। मझली उत्तर की लड़की थी, कैसी काली-काली आँखें थीं ! एक साँस में दस सेर जड़हन का चिउरा कूटकर फेंक देती थी। और छोटकी मैं थी। अपने दादा के यहाँ से जब उस घर में गौने के डोले पर चढ़कर आयी, तब मेरा वो कितना छोटा था ! ठीक से धोती बाँधना भी तो नहीं आता था; लाँग खुल-खुल जाती थी। गाँव के लड़कों के संग जब वो भैंस-गोरू चराने जाता था, तब मैं ओखली पर खड़ी होकर जँगले से उसको निहारती रह जाती थी। उस बेचारे को क्या पता कि मैं उसकी दुलहन हूँ। लेकिन नहीं, पता तो जरूर रहा होगा, हाँ उसका अनुभव अलबत्ता नहीं था।····हाय ! कितना अच्छा नाम था उसका !····पर उसका नाम क्यों लूँ ?····न जाने कितने पूर्व जन्म के पाप से इस भव-सागर में आ कूदी, अब उसका नाम लेकर क्या होगा ?····यह दसई कुर्मी····नहीं-नहीं, इसका भी नाम अब क्यों ? यह तिलकौरी के पड़ोस वाले गाँव गोबिनापुर में रहता था। तब यह कलकत्ता से नौकरी करके पहली बार अपने गाँव

आया था। मेरे घर से इसके यहाँ का आना-जाना होता था। मेरे बड़कू के लिए यह एक छाता ले आया था। ससुर को इसने चूना रखने के लिए चाँदी की चुनौटी दी थी। दरवाजे के किवाड़ के पीछे खड़ी थी, तभी इसने मुझे पहली बार देखा था। मेरे करम में आग लगे, तभी मैंने भी इसे देखा। तब से सुबह-शाम रोज यह मेरे घर आने लगा। मेरे दरवाजे पर फाग गाया जाता। यह उस गोल का अगुआ गायक होता। मैं भीतर औरतों के गोल की अगुआ थी। होड़ में कभी-कभी सुबह हो जाती। एक बार मुझसे न रहा गया, मैंने भीतर से एक घड़ा पानी लाकर इसके ऊपर उड़ेल दिया। इसने दौड़कर मुझे पकड़ना चाहा तो इसका दायाँ हाथ मुझसे पूरी तरह छू गया।····मेरे दरवाजे पर गर्मियों के दिन में धोबी का नाच हो रहा था। मैं बाहर ओसारे में बैठी थी, और यह सफेद कुरता पहने, खूब जुल्फ़ी झारे, भकाभक बीड़ी पीते हुए नीम के चबूतरे पर बैठा था। धोबी का लड़का कमर में बड़े-बड़े घुँघरू बाँधे हुए नाच रहा था। धोबी के नगाड़े के साथ कटोरा बहुत तेज घनघना रहा था—धिन् ताँड़े-आँने-ना-ने....धिन् ताड़े····आँड़े····

निबिया क पेड़वा जबै नीक लागै
जबै नीक लागै,
कि जब निमकौरी न होय....
हाय राम, जब निबकौरी न होय !
फुलवा क सेजिया जबै निक लागै,
जबै निक लाडै
कि बगले दुलहवा होय,
हाय राम बगले दुलहवा होय !

इसने मेरी ओर देख कर धोबी के लड़के के सामने मारे खुशी

के एक रुपया फेंक दिया। धोबी का लड़का और मस्त होकर नाचने लगा। मुझे न जाने क्या हो गया, मैं उसी रात इस चौधरी के साथ उस घर से भाग निकली !....यह मुझे लेकर कलकत्ते की ओर चला। मुझे संग लिये-लिये कहाँ-कहाँ नहीं छिपा ! पर जहाँ किसी की आँख मुझ पर उठी नहीं कि यह मुझे लेकर वहाँ से भाग पड़ता था। जब सब शान्त हो गया, तब यह मुझे लेकर सरजू के उस पार माझे में रहने लगा। मैं दो बच्चों की माँ हुई। एक दिन वहाँ पुलिस के एक सिपाही ने मुझसे मज़ाक किया। इसने सामने से ही सुन लिया; सिपाही के ऊपर लाठी लेकर टूट पड़ा। वह भाग गया, तो जी भर कर मुझे पीटा !....फिर मुझे लेकर सरजू के इस पार चला आया।....

समुन्नरी अब छः बच्चों की माँ !

पर दो ही उसके सामने जीवित सो रहे हैं। शेष चार इसी सरजू में....

समुन्नरी फफक कर रो पड़ी।

सरजू-पार के आसमान से फिर एक नक्षत्र टूटा। समुन्नरी उसे देख कर डर गई।

पुरवाई कुछ थम गई थी। आधी रात से ऊपर का समय हो रहा था। मुआँ चिरई बोलती-बोलती कहीं उड़ गई थी। समुन्नरी ने अपने आपको देखा, जैसे अपने को पहचान रही हो। यह वही समुन्नरी है क्या ? आँसू पोंछती हुई वह उठ खड़ी हुई। रात की उस भयानक निर्जनता में वह चारों ओर घूम-घूम कर देखने लगी....आस-पास के गाँव....फिर उनसे दूर के बाग....वह धंजौल।

संध्या समय गाँव के पण्डित बेचारे दसई के घर आकर समुन्नरी के तीसरे लड़के भुलई को भभूत दे रहे थे। उधर से कन्धे पर कुदार रखे दसई चौधरी आया। समुन्नरी को उनके पास बैठा देख कर आग-

बबूला हो गया। पचास गालियाँ दीं पंडित को। समुन्नरी को हाथ-पैर बाँध कर मारा। गाँव वालों ने जब उसे पकड़वा कर पंचायत में बुलाना चाहा, तब दसई अपने घर में आग लगा कर बच्चों-सहित सुकुल के बाग में मड़ई डाल कर रहने लगा। वर्षा के दिन, टूटी-सी दसई की मड़ैइया। भुलई को एक रात साँप ने डस लिया।....

दसई फिर बैरमपुर में जा बसा। एक वर्ष बाद, प्रहलाद नायक पर समुन्नरी की ओर से शुबहा होने पर दसई ने नायक का खलिहान फूँक दिया। कोई न जान सका कि यह दसई चौधरी की करतूत है, क्योंकि उसके चार ही दिन पहले दसई ने अपने गले में तुलसी की कण्ठी बाँधी थी। फिर बैरमपुर छोड़ कर चौधरी ने लोहा टाँड़ के टीले पर अपनी मड़ई छायी। पास हाजीपुर गाँव का कब्रिस्तान और टीले पर न जाने कब का बना हुआ वह कुआँ। वहाँ तीन ही महीने के भीतर समुन्नरी की गोद का बच्चा और उसके पहले की लड़की, दोनों चटपट में चल बसे।

फिर मइन्दी गाँव !

फिर उसे छोड़ सरजू का घाट !

चौथे बच्चे की वहाँ आहुति !

भोर होने को थी। समुन्नरी अपने दोनों बच्चों के बीच उनके सर पर हाथ रखे हुए मौन बैठी थी। उसका वह सारा अतीत सामने था।

दसई तभी अँगौछे में बहुत-से पके हुए आम बाँधे लौटा।

उस दिन असाढ़ की अन्तिम रात थी। शाम से सुबह तक मूसलाधार पानी बरसा। दसई की मड़ई क्या उसके सामने रुकती ? थूनी थाम के साथ मड़ई आधी रात के समय मचमचा कर बैठ गई।

ऐसी घटना दसई के लिए कोई नयी न थी। ऐसा तो हर बरखा

में हुआ है। क्या वह सुकुल का बाग, क्या लोहा डाँड़ और क्या वह सरजू का घाट। दसई उस रात अपने बच्चों सहित जगा हुआ बैठा था। मड़ई जब धीरे-धीरे गिरने लगी, तो एक ओर दसई और दूसरी ओर समुन्नरी ने उसे हाथ देकर अपने ऊपर बचा लिया। सब उसके नीचे बैठे रहे। पर समुन्नरी की ओर उतरहिया के झोंके सीधे बौछार मार रहे थे। वह अपनी जगह छोड़ नहीं सकती थी, दाएँ-बाएँ थूनी-बेंड़ा और सामने बरतन-भाँड़ा।

समुन्नरी आधी रात से सुबह तक उसी तरह बौछार के झोंकों से भीगती रही। दसई दूसरी ओर बैठा हुआ इन्द्र और दैव को घिना फोर-फोर कर गालियाँ देता रहा। दसई के लिए उस वर्षा का क्या महत्व ! मज़दूर आदमी, न अपना खेत, न अपनी बारी ऊपर से बेचारी समुन्नरी उस बरखा से नाहक भीग रही थी।

"अच्छा-अच्छा, राम-राम कह, समुन्नरी। उत्तर की ओर दैव कट रहा है। पानी कुछ पटाते ही छप्पर उठा कर तुझे इधर कर लूँगा।.... बाबू की बगिया में लदियन आम गिरा होगा। मइन्दी के नाले में बड़ी-बड़ी मछली चढ़ रही होंगी।"

दसई ने समुन्नरी को उठाना चाहा। वह हाथ पाँव भींचे थरथर-थरथर काँप रही थी। सहारा देकर दसई ने उसे दूसरी ओर किया और स्वयं लाठी-अँगोछा लेकर बाहर निकल पड़ा।

सुबह बरखा की बूँदी टूटी। दसई एक ओर लाठी में पाँच सेर का रोहू और अँगोछे में आम लटकाए आया।

समुन्नरी दसई को देखते ही हँसने लगी, यद्यपि वह ठण्ड से बेतरह काँप रही थी। मछली-आम रख कर दसई गिरे छप्पर के भीतर दिया-सलाई ढूँढ़ने लगा।

दियासलाई पानी में गिर कर भीग गई थी।

चटपट दसई ने समुन्नरी की मदद से थाम-थूनी किसी तरह ठीक कर मड़ई खड़ी कर ली और आग के लिये फरीदपुर गाँव की ओर भागा।

वहाँ लाला के ओसारे में लोग बैठे हुये गाँजा-चिलम पी रहे थे।

वहाँ से आग लेकर दसई जब लौटने लगा, तो किसी ने कहा, "दसई, बब्बन बाबू ने तुम्हारी समुन्नरी को कान का झुमका दिया था, तुझे दिखाया था कि नहीं भला ?"

दसई मन मार कर रह गया। हाथ की आग मानो उसके बदन में लग गई।

मड़ई पर पहुँच कर वह समुन्नरी को बुरी-बुरी गालियाँ देने लगा। समुन्नरी मड़ई में भीगी चटाई पर हाथ-पाँव बाँधे पड़ी थी। दुलरी ने उसे कथरी ओढ़ा दी थी। तेज बुखार से कराहती हुई वह हू-हू कर रही थी।

ऊधो बैठा आम चूस रहा था, और मक्खियों से घिरा हुआ था।

बोरसी में आग सुलगाकर दसई का जी न माना। वह मड़ई में घुसा ! चार-छः मिट्टी के बरतन थे। दो-तीन खाली पड़े थे, शेष में से किसी में मटर, किसी में जौ-केराई। एक मोटरी में कुछ फटे-पुराने कपड़े बँधे रखे थे। दसई ने उसे खोल-खोलकर देखा। उसमें कहीं भी उसे झुमका न मिला। हाँ, उन चच्चों के दो-एक फटे-पुराने कपड़े उसमें अवश्य मिले, जो दसई की उस गृहस्थी से सदा के लिये मुक्ति पा गए थे।

दूसरी ओर टिन का पिचका हुआ, न जाने किस युग का एक छोटा-सा बकस पड़ा था। समुन्नरी के इस बकसे में चार आने वाला ताला लगा हुआ था, जिसकी कुंजी समुन्नरी अपने गले में हार के रूप में पहने रहती थी। दसई ने ताले को मुट्ठी से ऐसा मरोड़ा कि

वह बेचारा कुण्डे सहित बकस से चिंचियाता हुआ अलग हो गया !

दसई ने बकस देखा, उसमें वैसा कुछ न था। किसी गहने की छाया तक भी न थी।

फिर समुन्नरी ने अपने उस बकस को क्यों इस तरह बन्द कर रखा था ?····एक कजरौटा, एक काठ की डिबिया····डिबिया में यह जरा-सा सिन्दूर और यह एक इतनी बड़ी टिकुली····!

दसई निस्पंद, मौन, वहीं बैठा रह गया। उसके सामने उसकी जन्म-भूमि गोबिनपुर तिलकौरी गाँव में समुन्नरी का वह घर, कलकत्ते में उनकी नौकरी और वह कमाई, उसके दिवंगत बच्चे सब-के-सब नाच गए।

समुन्नरी के माथे पर हाथ रख कर दसई ने भरे कण्ठ में पुकारा, "समुन्नरी ! रे समुन्नरी !" समुन्नरी का माथा तेज बुखार के जल रहा था। वह बेसुध-सी पड़ी थी।

दसई को कुछ न सूझा। ढाई रुपये में उसने वह रोहू मछली जयन्दीपुर के पठान के हाथ बेच दी।

सीधा भागा हुआ हँसवर बाजार गया। एक रुपया का दारू खरीदा, एक रुपया बड़े हकीम को देकर दवा ली और आठ आने के चावल लिये हुए वह तीसरे पहर अपनी मड़ई पर लौटा।

उसने देखा, समुन्नरी बैठी हुई है। उसकी आँखों में काजल लगा है। माँग में सिन्दूर भरा है, और माथे पर वही गोल, लाल-लाल टिकुली।

हाय ! कितनी सुन्दर है यह ?

पर क्यों यह इतनी सुन्दर हुई ?

दसई एक हाथ में दारू और एक हाथ में दवा और चावल लिये हुये खड़ा उसे देखता रह गया।

····मुला हमार औरत अगर सुन्दर है तो वह गाँव-भर की भौजी है का ? हँसना-बोलना तो उसका सुभाव है, बबुआ !....समुन्नरी को लेकर वह कहाँ भाग जाये ? सतजुग-त्रेता का वह जमाना कहाँ चला गया जब····

दसई को उस तरह चुप निहारते हुए देखकर समुन्नरी के मुख पर न जाने कहाँ से सहसा मुस्कान बरस आई।

दसई ने दवा-दारू उसके सामने रखकर समुन्नरी के माथे पर हाथ रखा। बुखार उसी तरह तेज था। दसई की ओर समुन्दरी ने देखा तो दसई डर गया।

"तुमने मेरा बकस क्यों खोला चौधरी ? उसमें तुम्हें क्या मिला ? तुम मुझ पर विश्वास क्यों नहीं करते ?"

समुन्नरी भला दारू क्या पीती ! जो कभी नहीं खाया-पिया, सो अब क्यों ?

दसई से उसने उस अनुच्चारित स्वर में कहा, जिसमें वाणी होती है पर कथन नहीं, 'सुनो हो चौधरी ! मैं अपने घर-द्वार, सास-ससुर और पति को धोखा देकर तुम्हारे संग भाग निकली थी। ठीक है, जैसा करम में बदा था, वैसा हुआ। मैं तुमसे एक नहीं, छः बच्चों की माँ हुई, और तुम्हें मुझ पर फिर भी विश्वास न हुआ।····ठीक ही है। मुझ पर क्यों कोई विश्वास करता ? विश्वास के लिये मेरे पास था ही क्या ? उसमें तो मैंने पहले ही आग लगा दी थी····। पर मेरे कारन मेरे बच्चे····खैर, फिर भी मेरे ये दो बचे हुए लाल।"

समुन्नरी ने अपने दोनों बच्चों को अंक में भर लिया। अपने माथे की वह बड़ी-सी गोल टिकुली दुलरी के माथे पर लगाकर वह उसे चूमने लगी, "सुनो हो चौधरी ! मेरी बेटी की सादी में मेरी ओर से यही टिकुली दहेज में दे देना !····"

समुन्नरी अगले दो दिनों तक तेज बुखार में बेसुध पड़ी रही। दसई दिन में भी वहाँ भय खाने लगा—ऐसा भय कि उसे हरदम लगता था कि उसकी मड़ई के चारों ओर असंख्य भूत-प्रेत, पिशाच और जिन्नात की सेनायें डोल रही हैं।

तीसरे दिन सुबह दसई चौधरी अपनी समुन्नरी को कन्धे पर लादे हुए फरीदपुर गाँव में आ बसा।

पर समुन्नरी और कुछ न बोली। वह आखिरी शृङ्गार करके, उसकी बरात मानो विदा हो गई।

पंचपेड़वा घाट पर समुन्नरी को फूँककर दसई के संग गाँव के लोग उसके दरवाजे पर आ बैठे।

दो क्षण बाद, लोग वहाँ से उठकर चले गये। दसई समुन्नरी के दाह का कपड़ा अपने गले में बाँधे हुए वहीं बैठा रह गया, जैसे उसकी कमर ही टूट गई हो। फिर उसने देखा, मानो हाथ में पीने का पानी लिये हुए घर में से समुन्नरी निकली है, उसी तरह हँसती हुई, माथे पर वही टिकुली सुनो हो चौधरी, उठो, लो पानी पी लो।.... उठो !....अरे अब तो मेरा विश्वास करो।

एक और कहानी

अभी थोड़ी देर में शाम होगी। गंदा दरिद्र गाँव नूरचक तब और भी ज्यादा उदास हो जायेगा। तब लोग अपने-अपने घरों में जायेंगे। घरों के ऊपर रात के सन्नाटे में बोलती हुई वे चिड़ियाँ उड़ेंगी। जिन्हें वे अशुभ निशाचर कहते हैं। फिर वे सो जायेंगे—सोते रहेंगे—सोते रहेंगे।

गाँव के पश्चित ओर भुतही बगिया है, बूढ़े आम के काले-काले पेड़, किन्तु क्वार के इन दिनों में ऊपर से वे अपनी घनी बस्तियों के कारन बेहद हरे दिख रहे हैं। पर अभी थोड़ी देर बाद जब सूरज डूबने लगेगा तो आम के इन्हीं पेड़ के माथों पर वह गुलाबी रोशनी थरथरा कर एक बारगी टूट जायगी तब बगिया में एकाएक अंधेरा छा जायेगा।

पर अभी शाम होने में देर है। बगिया में गाँव के नंगधिडंग बच्चे पाल्हागोटी खेल रहे हैं। वह अजनबी अकस्मात इन्हीं बच्चों के सामने आ खड़ा हुआ। बच्चे उसे देखते ही काठमार चुप हो गये। इतने ठाटबाट का आदमी उन्होंने शायद पहली बार देखा है। आदमी के तन बन बदन पर इतनी चीजें हो सकतीं हैं—वे घबड़ा गये थे।

पैरों में नये काले पम्प के जूते। कोरी छालटी का पैजामा। रंगीन पापलीन की कमीज। हाथ में बक्सा, दूसरे हाथ में झोला और कंधे पर कागज में लिपटा नया छाता।

सारे बच्चे एक टकटकी बाँधे उसे देख रहे थे। जब तक वह अजनबी उन बच्चों से कुछ बोले, दो तीन बच्चे मारे डर के गाँव की ओर भाग निकले।

तब उसके मुँह से निकला—क्यों रे हमकूं तुम लोगन पहचानता नहीं ? कैसा माफिक तुम पचन हमको देख रहा है ?

यह अंग्रेजी बोली सुनते ही आधे बच्चे खिलखिला कर हँस पड़े। बाकी सहम कर आपस में और घिर गये। तब उसने कहा—अरे हमारा नाम पूरन तीवारी है रे बच्चा लोग। हमारा मुलुक यहीं गाँव है। लो मिठाई खाओ····

उसके हाथ में गट्टे बताशे चमके और उसी के संग सारे बच्चों के मुँह का पानी उनकी मटमैली आँखों में तिर गया। वह गाँव की ओर बढ़ा।

और बच्चे अपनी-अपनी अमृत मिठाई चाटते हुए उसके पीछे-पीछे चले। निःशब्द····चुपचाप।

गाँव में घुसते ही सबसे पहले उसे देखा मिसराइन की काली कुतिया ने। वह कटकटाकर दौड़ी। बच्चों ने जब उसे खदेड़ा, तो वह बीच गाँव से भूँकती हुई दौड़ी। फिर क्या था गाँव के सारे बनकूकुर भोंकन लगे।

वह सीधे चुपचाप अपने सूने दरवाजे पर आ खड़ा हुआ। गाँव के बीचो-बीच वही पुराना घर। सामने फूस की छप्पर, पीछे खपड़ैल का भाग। और घर के पिछवारे वही महुए का पेड़—जिस पर से एक कौआ उड़ कर छप्पर पर आ बैठा। ठीक वहीं, जहाँ मुड़ेर पर लौकी की

कोमल गाँछ में एक सफेद फूल खिल रहा है।

दरवाजे पर बँधा एक बैल उसकी ओर ताकने लगा। वह बड़ी देर तक अपने दरवाजे पर चुपचाप खड़ा रहा। सूनी निगाहों से चारों ओर देखता हुआ अपने मन में कुछ जोड़ता-घटाता।

फिर तेजी से बरामदे में घुसकर उसने पुकारा—माई ओरे माई।

घर....बंद था। बरामदे में से एक नंगी चारपाई निकाल कर वह बाहर सहन में बैठ गया। तब तक गाँव के वे कुत्ते चारों ओर की गलियों के मुँह पर आकर बाकायदा खड़े हो गये थे। और मुँह उठा उठाकर अपने उसी पंचम स्वर में····

एक-एक करके पड़ोस के लोग तिवराइन दाई के उस दरवाजे पर आने लगे। पहले आयीं लड़कियाँ—खिसखिसकर बेमतलब हँसती और तिवराइन के सूने बरामदे में जा खड़ी होतीं।

फिर आये बूढ़े लोग—झुकी कमर-लाठी टेकते हुए—'के हो ये बबुआ ? कहाँ से आइल भइल है हो ?' और वे उस बेचारे के मुँह के पास तक चले जाते ?

'का करी ये बबुआ। आँखिन से नाईं देखात अब !'

फिर आये तिरवराइन दाई के पट्टीदार लोग—औरत मरद दोनों—'के है हो ?'

'नमस्ते ! मेरा नाम है पूरन तिवारी।'

'के पूरन तिवारी ! हूँ ! उहै मसल कि देसी कौआ मराठी बोल !'

औरतों के झुंड़ में से किसी ने कहा।

तब तक अइबी पाँडे ने उसे पहचान लिया—'अरे जा भला मै, ई उहै पुरया तो होय हो !'

यह नाम सबके सामने कौंध गया। फिर खिंची हुई चुप्पी और फिर खुसुर-फुसुर में वही पुरई नाम धीरे-धीरे सब के बीच में तनकर खड़ा

हो गया।

लोग उसे नीचे से ऊपर तक पहचानना चाह रहे थे। 'ना....ना.... ना....ई पुरई नहीं हो सकता। ना दंडवत ना पाँवलगी न जुहारी। ई कौनो तुरुक है तुरुक! देखो न कोरे कपड़े का पैजामा। अरे ई कौनो बेधर्मी है कि····देखो न, ना मुँह पर दाढ़ी न मोछा।

सब से घिरा हुआ वह वहीं खाट पर चुपचाप बैठा था। उसी समय आयीं तिवराइन दाई—सिर पर खाँची में छिली घास भरे हुए। अपने दरवाजे पर इतनी भीड़ उन्होंने कभी न देखी थी। सो वह बेहद घबरा गई।

पर सामने वही पुरई।

माँ को अपने पुरई की पहचान में जरा भी देर न लगी। माँ ने पहले पुरई को मूर्तिवत निहारा। फिर पुरई को अंक में कसकर रो पड़ी।

किन्तु आज पुरई की आँखों में आँसू नहीं आये। वह माँ को धैर्य बंधाने लगा—रोते नहीं माई! रोने से क्या होता है? रोने से तो····।

पुरई रोती हुई माँ को जैसे-जैसे धीरज बँधा रहा था। उसे वह घड़ी कसकर बेधती जा रही थी। जब पाँच साल पहले वह आधी रात के समय पश्चिम के बगिया के पास माँ से विदा ले रहा था। उस घड़ी पुरई सिसक-सिसक कर इसी तरह (जैसे आज माँ रो रही है) रो रहा था। और शांत गंभीर माँ उसे विदा और आशीष दे रही थी। पुरई को याद है—माँ उसके सामने बिलकुल भी नहीं रोई थी। पुरई को स्टेशन जाने वाली पक्की सड़क पर छोड़कर जब वह एकाएक रुकी थी—और वह अकेले उससे आगे निकल गया था—तब उसने सुना था, माँ का वह करुण विलाप। तब एक क्षण के लिये पुरई बहुत ही

कमजोर हो गया था। पर आज वही पुरई बिलकुल निश्चल गंभीर, माँ के आँसुओं से आरपार देख रहा है। सब कुछ साफ और सच्ची-सच्ची।

पर उसने तब बिलकुल नहीं देखा था, या देख सकता था। जब उसके पिता का अचानक देहांत हुआ था। और उसके बाद ही जब उसके हरवाहे ने उसके यहाँ से काम करने से जवाब दे दिया था। जब उसके पट्टीदारों ने उसे सुझाया था कि वह अपने दसों बीघे खेत उन्हें अधिया बटाईया पर दे दे। और जब उसे अपने खेतों में हल चलाने के लिये पूरे गाँव भर में कोई आदमी न मिला था।

पुरई तब कुछ नहीं समझ पा रहा था।

तब वह सिर्फ इतना ही समझता था कि ब्राह्मण हल नहीं जोत सकता। जब तक यह जनेऊ है। तब तक हल की मुठिया छूना पाप है।

फिर क्या होगा?

पहली बार तब पुरई के सामने यह पहला प्रश्न उभरा था। तब माँ ने साफ जवाब दिया था—तब क्या होगा! यही कि हमारे खेत परती पड़ जायेंगे। और हम भूखों मरेंगे। या हमारे खेत लोग अधिया बटाई पर ले लेंगे और एक दिन हम अपने खेत से बेदखल हो जायेंगे।

सच माँ!

हाँ रे पुरई!

और यहीं से पुरई की समझ शुरू हुई थी। वह कई दिन अशांत था—चुपचाप वह आँख खोले नंगी चारपाई पर जगा पड़ा रहता था। न भूख न नींद। न बात न चीत।

तब एक दिन पुरई ने माँ से कहा था—माँ, सुन! मैं हल जोतूँगा।

माँ आँख फाड़े पुरई को बस देखती रह गई थी।

माँ की आँखों में तब और कुछ नहीं ढरका था—सिर्फ एक बाँकी छवि, एक दूल्हन, एक बहू की सूरत उसकी आँखों में बरसी थी। नूरचक गाँव के सिवान से मिला हुआ वह सकलडीहा गाँव वहाँ के घूरे सुकुल की लड़की रमरत्ती से पुरई का ब्याह····।

माँ थर-थर काँप गयी।

नहीं पुरई ऐसा कभी नहीं होगा।

क्यों भाई ?

माई तब पुरई के सामने कहने लगी थी। तभी पुरई को पहली बार पता चला था कि रमरत्ती भी कोई है और इस सब से ऊपर ब्राह्मण धर्म है। वह जात बिरादरी से अलग कर दिया जायगा।

तब पुरई ने माँ से निर्णय किया था कि वह रात को सब से छिप कर खेत जोतेगा।

आज पुरई वह बीती बात सोच रहा था। माँ के आँसुओं के आर पार....से तटस्थ होकर स्वथा एक नये रूप में। और आज उसे नूरचक-गाँव पर तरस आ रहा था। सबसे ज्यादा तरस उसे अइबी पाँडे और कल्लू तिवारी पर आ रहा था। जिन्होंने तब उस रात पुरई को रंगे हाथों हल जोतते पकड़ लिया था। और तब बेचारे पुरई को अगले दिन अपना गाँव छोड़ना पड़ा था। वह दूर बहुत दूर बम्बई भाग गया था। और वही पुरई बम्बई के एक कपड़ा मिल में मजदूर बना था।

तब से आज तक नूरचक गाँव में कितनी पुरवा हवा बही थी। कितना पछियाँव और कितनी वर्षा ! पुरई के माथे पर तब से बम्बई में कितनी धूप कितनी धूल और कितना धुँआ गुजरा था। आज वह सब एक साथ देख रहा है। अब उसके माथे पर कितनी लकीरें उभर आई

हैं —इसे वह खुद महसूस कर रहा था।

एक दिन अइबी पाँडे और कल्लू तिवारी न जाने कहाँ से गाँव में यह खबर ले आये कि पुरई बम्बई में जेल की सजा भुगत चुका है।

पुरई की माँ ने डट कर विरोध करना चाहा कि यह सब झूठ है। किन्तु पुरई ने साफ-साफ बतला दिया कि वह एक बार नहीं दो-दो बार बम्बई में जेल हो आया है। माँ ने तब मारे क्रोध के पुरई के सामने अपना मुँह पीटना शुरू किया था। तब पुरई ने माँ को वह सारा किस्सा बतलाया था।—मजदूर यूनियन का। किस तरह से मिल मालिक ने मजदूर हड़ताल के समय कुछ मजदूरों को पुलिस के हाथ पिटवाया था। और हड़ताल खतम होने के बाद एक दिन मिल मालिक ने अकस्मात मिल में ताला लगा दिया था। फिर एक बार जब पुरई समेत तेरह मजदूर मिल से निकाल दिये गये थे।

पुरई रात को सब कुछ हँस-हँसकर माँ को बताता रहा—जैसे वह कहीं से चारो धाम करके लौटा है। पर माँ कुछ नहीं समझ पा रही थी।

वह बस पुरई का मुँह देखती रह गई।

यह कैसा हो गया मेरा पुरई !

मेरा नाम पुरई नहीं माँ ! पूरन तिवारी है....पूरन

पुरई अपने बक्स में बहुत-सा सामान भर कर बम्बई से ले आया था। माँ के लिये कपड़े सामान के अलावा दो रेशमी साड़ी चमकदार, अँगिया, पाउडर, क्रीम और न जाने क्या-क्या।

एक दिन उसने सारा सामान रेशमी कपड़े में बाँध कर माँ के सामने रख दिया। और खुद खिस-खिस हँस कर लजा गया। माँ उसे लिये हुये उसी दम सकलडीहा गाँव की ओर बढ़ी। पुरई गाँव के किनारे खड़ा एक टक माँ को उस तरफ जाते हुये निहारता रहा निहारता रहा।

गाँव में बड़े तिवारी के दरवाजे पर श्रीमद्भागवत की कथा

बैठी थी। अर्थात् पिपरौली के कथा पंडित ने गला फाड़-फाड़ कर चिल्लाते हुये बताया था—'अब पृथ्वी भगवान से प्रार्थना करती भयी....तब हुआ कृष्ण जन्म ! बोलो कृष्ण भगवान की जय ! अब भइया, कृष्ण पहुँचाये गये गोकुल....। जो है सो गोकुला में पंचो, पूतना, धेनुक, प्रलम्बासुर ई है कि रास लीला....।

इसी बीच कथा पंडित से लहुरी महरा ने हाथ जोड़ कर एक पैर पर खड़े होकर पूछा था—अब-कब होगा कृष्ण भगवान का जन्म ? पृथ्वी पर तो महाराज, अब बहुत पाप ह्वैय गया है ?

कथा पंडित चुप। गाँव के और लोगों ने लहुरी का हाथ खींच कर जमीन पर बैठा लिया। मुला लहुरी बड़बड़ाने लगा, सही कहता है पुरई, ई सब पोंपलीला है। अगर भगवान हैं तो अवतार काहे नहीं होता ? बड़े तिवारी ने लहुरी को डाँट कर अपने दरवाजे से हटा दिया। और तब बात छिड़ी पुरई की। माँ पुरई से रोज भगवत की पूजा में जाने के लिये कहती थी। पुरई चुप रह जाता था। लहुरी महरा के कहने के बाद, माँ पुरई से जिद कर बैठी कि वह कथा जरूर सुनने जाय और वह संग भी गयी अपने बेटे के।

वहीं पुरई ने सवाल किया—कृष्ण माने ?

सब चुप। कथा पंडित ने बताया, कृष्ण माने भगवान। पुरई ने कहा—'नहीं'। कृष्ण माने किसान हलधर का सगा भाई ! बलराम और कौन है ? शूद्र, क्षत्री ?

कथा पंडित ने कहा—'क्षत्री !'

पर उनके हाथ में हल की मुठिया जो है, पुरई ने कहा। पंडित चुप तिवारी और पाँडे लोग चुप !

पुरई की माँ की छाती फैल गई। वाह रे मेरा पुरई !

आवे मेरे पूत का जवाब दे कोई।

पुरई जेल गया है। कृष्ण भगवान का तो जन्म ही जेलखाना में हुआ।....वाह ! यह बात तो पुरई की माँ को अभी तक मालूम ही न थी।

दूसरे दिन तिवराइन दाई ने पुरई को खिला-पिला कर कहा—देखो पुरई, आज जरा तुम नीक-नीक, सुन्नर कपड़ा लत्ता पहिन कै जरा सकलडीहा ह्वै आवो !

रमरत्ती और सकलडीहा।

बम्बई जाने से पहले रमई ने रमरत्ती को देखा है। शिवरात के मेले में पहली बार माँ ने ही उसे दिखाया था। फिर दूसरी बार उसने खुद देखा है रमरत्ती को। सकलडीहा के जामुन बाग में।

पुरई ने पेड़ के पीछे से रमरत्ती को देखा था और वह बक्क कह कर भाग गई थी। लाज से सराबोर ! तब से पुरई ने रमरत्ती को साक्षात नहीं देखा। किन्तु बम्बई में वह रमरत्ती को अक्सर अपनी कल्पना में देखता था।....भरी पूरी....शाँत गंभीर....बड़ी-बड़ी आँखों वाली.... रमरत्ती....।

नूरचक के ब्राह्मणों ने पुरई को अधर्मी नाम दिया था। और यह नाम उस सकलडीहा में भी पहुँचा था। पुरई से पहले। रमरत्ती के बाबू घुरहू सुकुल ने पुरई से सीधे कहा—बाभन कै लरिका क्रान्तिकारी हो जाय, ई बात कुछ समझि माँ नाई आवत।

पुरई मारे लेहाज के चुप था।

तब तक उसने देखा, किवाड़ के पीछे कैसी गुलाबी छाया नाच रही थी।

वह उसी अलौकिक छाया को सुनाते हुये बोला—इसमें मेरा क्या कसूर ? सही बात यह है कि क्रान्ति जाति नहीं गिनती। क्रान्ति करने वाली ताकत तो कुछ और ही है। वही सब कराती है।

यह कहते पुरई बन्द किवाड़ को एक टक देखता रहा किवाड़ के पीछे किसी कोमल दृश्य को निहारता रहा।

दोपहर से शाम तक पुरई धुरहू सुकुल के दरवाजे पर बैठा रहा। जिस तरह नूरचक के ब्राह्मण लोग उससे बात नहीं करते थे, ठीक उसी तरह से सकलडीहा के भी लोग उससे चुप थे। किन्तु पुरई को इससे दुख नहीं लग रहा था। वह चूँकि इस सब का कारण जानता था। गाँव और शहर ! जाति, धर्म और जीवन····सब में कितना एक फर्क कितना अन्तराल ! और उसे बचपन में सुनी हुई बातें अब अकस्मात याद आ रही थी—पुरई पुरवा भूतानां, शहर बसे सो देवानां !

पुरई को इस बातका संतोष था कि वह जब सकलडीहा गाँव में घुसा था—इस गाँव के कुत्तों ने उसे माफ किया था। उसके नूरचक के कुत्ते तो अब तक उसे देख कर भोंकते हैं। जैसे उनके कानों में हर क्षण कोई कहता हो कि पुरई चोर है, चंडाल है····।

यह सब सोच कर पुरई की हँसी नहीं रुकती। वह अपने भीतर ही हाहाकार करके हँस पड़ता है—और इस अदृश्य हँसी की लहर जब लौटती है, तो उसका अन्तर भीग जाता है।

संध्या होते-होते पुरई को धुरहू सुकुल का मन मिल गया कि वह क्या सोच रहे हैं। और पुरई रमरत्ती से एक बार जरूर मिलना चाह रहा था। पर शायद वह सम्भव न था।

साँझ गहरी हो गयी थी। पश्चिम की बगिया के पीछे उस दिन का सूरज कभी का डूब चुका था। पर उसकी भभक गहरी संध्या को बाँधे थी। पुरई जैसे ही सुकुल के घर के पिछवाड़े को पार कर मैदान की ओर बढ़ा, हरे सरपतों के जंगल में से कोई गुलाबी छाया कौंधी।

पुरई रुक गया। सामने रमरत्ती खड़ी थी।

पुरई से कुछ न बोला गया। उसने पहली नजर में जो रमरत्ती को

देखा, वह आर-पार स्वयं बिंध गया।

रमरत्ती के मुँह से फूटा—तुहँका के कहे रहा क्रान्तिकारी हौवै बदे ?

पुरई कुछ जवाब दे कि उसी क्षण रमरत्ती के बाबू की पुकार आयी—घर के आँगन से बढ़ कर यहाँ सरपत जंगल को चीरती हुई। रमरत्ती उसी दम भाग गयी और पुरई उसी सरपत खंड के पास न जाने कितनी देर तक खड़ा रहा।

गाँव में रबी फसल की बोवाई की तैयारी शुरू हो गई थी। गन्ने का रस मीठा होने लगा था। पुरई ने अपने बैल की जोड़ी लगा ली थी।

तभी धुरहू सुकुल ने आकर अपना फैसला सुना दिया था कि यदि पुरई फिर हल की मुठिया छुयेगा तो उससे मेरी बेटी का ब्याह नहीं होगा।

सुकुल और पुरई के बीच माँ हाथ जोड़ कर खड़ी हो गयी।

तभी पुरई के मुँह से निकला—कि मुझे यह ब्याह नहीं चाहिये।

वह ठीक दोपहर का वक्त था। पुरई ने बैलों की जोड़ बाँधी। हल को कंधे पर रख कर नूरचक गाँव को चीरता हुआ वह अपने खेत की ओर बढ़ा। पीछे-पीछे माँ चली। हाथ में जल से भरा हुआ लोटा लिये। अक्षत और पल्लव डला हुआ जल।

परती खेत में पुरई ने कस कर हल की मुठिया दबाई और बैलों को तितकारी दी। और तेजी से पुरई का हल चल पड़ा।

~~जै भरती माता की~~।

जुते हुए खेत की गर्म मिट्टी में गाँव के वे बनकूकुर आकर लोटने लगे।

हल जोतते-जोतते पुरई की एक नजर सामने सकलडीहा की ओर उठी। उस समय सूर्य पश्चिम में डूबने जा रहा था। उसकी एक प्रकाश रेखा सरपत के उस नन्हें से कोने पर बिछ गयी थी।

पुरई ने देखा कि कोई चितवन लिये वहाँ खड़ा है—वही चटक रेशमी साड़ी पहने हुये……।

● ● ●